Chapter-1

प्रथम अध्याय

अखा का जीवन-वृत

-प्रथम अध्याय-

अखा का जीवन-वृत्त

अखा का जीवन-वृत्त लिखने में उपलब्ध बहि:साक्ष्य एवं अंत:साक्ष्य का आधार लिया गया है।

बहि:साक्ष्य

बहि:साक्ष्य की आधारभूत सामग्री निम्नलिखित स्रोतों से प्राप्त की जा सकती है:

:क: प्राचीन और अर्वाचीन संत भक्तों की बानी।

:ख: अखा से संबंधित स्थान और वस्तुयें।

:ग: अखा से संबंधित जनश्रुतियाँ।

अब हम उपर्युक्त स्रोतों की क्रमश: परीक्षा करेंगे।

: क : विक्रम की १८ वीं सदी के प्रथम दशक से विक्रम की १९ वीं सदी के चतुर्थ दशक तक के संतों की बानी को प्राचीन संत भक्तों की बानी में गृहीत किया गया है। इस समय के अंतर्गत आनेवाले संतों में लालदास, वस्ता विश्वंभर, प्रेमदास, प्रीतम, कुबेरदास, भोजा भगत की गणना की गई है। विक्रम की १९ वीं सदी के पंचम दशक से लेकर विक्रम की २१ वीं सदी के प्रथम दशक के संतों में महात्यराम, अर्जुन भगत, सागर महाराज, गुलाब भगत और भगवानजी महाराज को लिया गया है।

प्राचीन एवं अर्वाचीन संतों के उल्लेखों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: पहले वे उल्लेख जिनमें अखा के जीवन का स्पष्ट निर्देश है और दूसरे वे उल्लेख जिनमें अखा का श्लिष्ट रूपसे निर्देश हुआ है।

पहले उन प्राचीन संतों की बानी का अवलोकन किया जायेगा जिसमें अखा का स्पष्ट निर्देश मिलता है ।

संत लालदास का समय सं० १७१०-१८०० वि० तक का माना जाता है। वे वीरपूर [ता० वाडाशिनोर] के निवासी और जाति के छीपा भावसार थे[१]। प्राप्त सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सर्व प्रथम इन्होंने ही अखा का उल्लेख किया है । ये अखा के प्रथम शिष्य भी है[२]। इन्होंने अखा का अपने गुरू रूप में बड़े ही आदर के साथ अनेक वार स्मरण किया है :

:क: राम जाण्ये श्री रामजी रे, भासे ते स्वयं प्रकाश
अखा गुरू चरण प्रसादथी एम कहे सेवक लालदास[३]।

:ख: ए साचुं साधन श्रीरामनुं रे हरि भासे सर्वावास
अखे गुरू चरण प्रसादथी एम कहे सेवक लालदास[४]।

:ग: महा स्वे पद पूर्णब्रह्म हरि रे भास्युं परम ज्योत प्रकाश
अखे गुरू चरण प्रसादथी रे एम कहे सेवक लालदास[५]।

लालदासजी कृत उपर्युक्त उल्लेखों से अखा के जीवन संबंधी विशेष ज्ञातव्य यह है कि अखा अपनी उत्तरावस्था में ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुके थे और इस रूप में वे इतने प्रसिद्ध हो चुके थे कि लालदास जैसे अनेक ब्रह्म जिज्ञासु व मुमुक्षु जन इनको अपने गुरू रूप में स्वीकार करने लगे थे ।

---

१. संतोनी वाणी : संग्रहकार-भगवानजी महाराज, सं० १९७६, वाणी विभाग - -परमहंस लालदासजी.

२. अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा : डॉ० योगीन्द्र त्रिपाठी, अप्रकाशित शोध ग्रंथ

३. संतोनी वाणी : वाणी विभाग, पृ० १.

४. वही - पृ० २.

५. वही - पृ० ३.

गुजरात के दूसरे प्रसिद्ध वेदांती भक्त कवि प्रीतमदास हैं। ये संधेसर [जि॰खेड़ा] के रहनेवाले थे। इनका समय सं॰१७८१-१८५४ वि॰तक का है[1]। इन्होंने अपने " भक्त - नामावली " नामक ग्रंथ में भारत के प्राचीन एवं अपने समकालीन संतों के स्मरण के साथ अखा का जो उल्लेख[2] किया है उससे भी संत लालदास के वक्तव्य की पुष्टि हो जाती है।

गाँव सारसा [जि॰खेड़ा] के स्वामी करूणासागर [सं॰१८२६-१९३४ वि॰] " सतकेवल " मंदिर के संस्थापक एवं " कायम पंथ " के प्रवर्तक थे। उन्होंने अपने " अगाध-गति " नामक ग्रंथ में कबीर और अखा के " ब्राह्मी स्थिति " प्राप्त संतों के रूप में जो उल्लेख[3] किये हैं उनसे एक बात स्पष्ट होती है कि गुजरात के अन्य बड़े-बड़े संत भी अखा का केवल स्मरण ही नहीं करते अपितु उन्हें अपना आदर्श भी मानते थे। दूसरी बात यह ध्वनित होती है कि अखा अपनी मृत्यु के पश्चात् अल्प समय में ही कम से कम गुजरात में उत्तर भारत के प्रमुखतम संत कबीर की कोटि के समझे जाने लगे थे।

भोजा भगत [सं॰१८४१-१९०६ वि॰] सौराष्ट्र के फतेहपुर गाँव के निवासी थे। वे सिद्ध आत्मज्ञानी संत कवि थे। उन्होंने सं॰१८६८ वि॰में " नानी भक्तमाल[4] " नामक ग्रंथ की रचना की है। उसमें भारत के प्राचीन काल से लेकर अपने समय तक के विभिन्न संतों का विवरण मिलता है।

---

१. गुजराती साहित्य [मध्यकालीन] अनंतराय रावल, सन १९६३, पृ॰२०४

२. प्रियदास जसवंत जनज्ञानी, अखो, गोपाल, बुटो ब्रह्म ध्यानी।

: प्रीतमदासनी वाणी : सस्तु साहित्य, अमदावाद, सं॰१९८१, पृ॰५२.

३. अ. अखा कबीर आवे जेटला, अयं ब्रह्म अस्मि तेटला।

— अगाध गति: पृ॰दवे अमृतलाल, सं॰२०१०, पृ॰५०

ब. अखा कबीर बरन्या ते माट, कुबेर वेद शिर पाडी वाट।

—वही, पृ॰५५.

४. भोजा कृत कविता: प्राचीन काव्यमाला, भाग ५. सं॰१९५६, पृ॰५०.

उसमें अखा से संबंधित उल्लेख है :

अखाजी वारे उतावलो, तुं रघुनाथ धायो[१]।

अर्थात् हे रघुनाथ ! अखा की सहायता के लिए तुम उतावली से धाये – दौड़ पड़े। इस पंक्ति में अखा की सहायता के लिए रघुनाथजी के उतावली से दौड़ पड़ने की जो बात कही गई है वह जहाँगीर बादशाह द्वारा अखा को थोड़े दिन तक कैद करने के बाद रिहा कर देने का प्रसंग बतानेवाली जनश्रुति की ओर संकेत करती है [२]। इससे उस जनश्रुति को बल मिलता है। इसी प्रकार की एक किंवदंति नरसिंह महेता के संबंध में भी प्रसिद्ध है। रा' मांडलिक के कारण नरसिंह महेता के जीवन में कारावास का एक प्रसंग घटित हुआ बताया जाता है। खुद परमात्मा ने कारावास में जा कर नरसिंह को भी पुष्पहार पहनाया था[३]।

अखा का उल्लेख करनेवाले गुजरात के अर्वाचीन संतों में महात्यमराम (सं० १८८२-१९४५ वि०) का नाम प्रमुख है। ये सीमरड़ा (जि० खेड़ा) के निवासी थे[४]। उन्होंने अपनी " भक्त नामावली " में अखा का इस प्रकार उल्लेख किया है :

अखा नरहर बुटा गोपाला, ए च्यों ब्रह्मानंद के बाला[५]।

इस उल्लेख से अखा, नरहरि, बुटा एवं गोपाल के एक दूसरे के समकालीन होने का जो तथ्य है उसका भी संकेत मिल जाता है। इन चारों के एक ही गुरु ब्रह्मानंद के शिष्य होने की जो लोकश्रुति प्रचलित है[६]; उसकी ओर केवल निर्देश ही नहीं होता प्रत्युत यह किंवदंति कम से कम सवा सौ वर्ष पुरानी तो है ही ऐसा भी माना जा सकता है।

---

१. भोजा कृत कविता: प्राचीन काव्यमाला, भाग ५ सं० १९५६ पृ० ५०

२. देखिए : प्रस्तुत अध्याय का पृ० २१.

३. गुजराती साहित्यना मार्गसूचक अने वधु मार्गसूचक स्तंभो : कृष्णलाल झवेरी, -सन् १९५८, पृ० ४३

४. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी : अप्रकाशित : संपा० डॉ० अम्बाशंकर नागर

५. महात्यम ज्ञान प्रकाश, प्र० महात्यमराम स्मारक समिति, सीमरड़ा ता० पेटलाद - सं० २००२, पृ० २७

६. देखिए : प्रस्तुत अध्याय का पृ० ५४

गुजरात में " अर्जुन भगत " के नामसे प्रसिद्ध आत्मज्ञानी संत कवि अर्जुन, अंकलेश्वर [जि॰भरूच] के निवासी थे । उनका समय सं॰१९०६–१९५६ वि॰ तक का माना गया है[1]। महादेव भाई देसाई द्वारा संपादित " अर्जुन वाणी " में अखा, धीरा, धना भगत और कुरमाबाई का उल्लेख करनेवाली निम्न लिखित पंक्तियाँ मिलती है :

धीरा ढाल धरू धना भक्तनी, अखा पहेरू बख्तर पाय
जेम शूरो चढे रे संग्राम शुं, कर कटारी कुरमाबाई ।[2]

अर्थात् धीरा भगत और धना भगत के उपदेशों की ढाल, अखा की बानी का बख्तर और कुरमाबाई के नाम की कटारी लेकर अर्जुन भगत जीवन संग्राम में जूझने के लिए कहते हैं ।

उपर्युक्त " रूपक " से यह स्पष्ट है कि धीरा, धना भगत और कुरमाबाई के साथ अखा भी अन्य संतों के लिए प्रेरणा-स्रोत रहे हैं । अर्जुन जैसा ज्ञान क्षेत्र का " खोजी " तथा अनुभवी संत भी अखा का इतना आदर करता है इससे अखा की एक महान संत के रूपमें स्थापना होती है ।

सूफी संत कवि सागर महाराज [सं॰१९३९–१९९२ वि॰] आधुनिक गुजराती साहित्य के ग़ज़लकारों में सुप्रसिद्ध हैं । वे सरखेज [ता॰अहमदाबाद] के निवासी थे । चित्राल [ता॰पादरा] में उनका आश्रम है[3]। उनके काव्य में परंपरा से चली आई सूफी कवियों की केवल प्रेम-भावना ही नहीं मिलती वरन ज्ञानमार्ग की विशिष्ट स्वानुभूतियाँ भी आविष्कृत हुई हैं ।[4] उन्होंने प्रेम के क्षेत्र में लाठी संस्थान [सौराष्ट्र]

---

१. अर्वाचीन कविता : सुन्दरम्,सन् १९५३ पृ॰४९९.
२. अर्जुनवाणी : संपा॰महादेवभाई देसाई, सं॰१९२२ वि. पृ.५
३. दीवाने सागर, दफतर बीजुं : संपा॰डॉ॰योगीन्द्र त्रिपाठी,भूमिका पृ॰११
४. अर्वाचीन कविता : सुन्दरम्,पृ॰२०१–२०२

के ठाकोर स्व॰सुरसिंहजी गोहेल [सं॰१६३०-१६५६ वि॰] " कलापी " को अपना आदर्श माना है। किंतु ज्ञान के क्षेत्र में अखा को ही अपने गुरू रूप में स्वीकार किया है। सागर महाराज ने संत अखा की तथा उनकी शिष्य परंपरा के संतों की बानियों का सर्व प्रथम संकलन किया तथा उन्हें प्रकाशित भी कराया । इससे भी यही सिद्ध होता है कि सागर महाराज की संत अखा तथा उनके सिद्धांतों में अटूट श्रद्धा और भक्ति थी ।

अखा के मत के अनुयायी संत भगवानजी महाराज का समय सं॰१६२६-२०१६ वि॰ तक माना जाता है। महात्मा कल्याणदास द्वारा स्थापित " कहानवा आश्रम " की गद्दी के इस संत ने अखा का इस प्रकार उल्लेख किया है :

अक्षयपदना वासी अखाजी ओम गुरू ।
ब्रह्म सदनना भोगी, जोगीराज जो[3]।

प्रस्तुत उल्लेख से तीन महत्त्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती हैं : [1] भगवानजी महाराज ने अखा को अपने गुरू रूप में स्वीकार किया है, [2] गुरू अखा वेदोपनिषदादि में वर्णित अक्षय पद के निवासी तथा ब्रह्म सदन के भोग करनेवाले हैं तथा [3] ये गुरू योगिराज भी हैं । अखा से संबंधित सभी उल्लेखों से प्रस्तुत उल्लेख की विशेषता यह है कि इसमें अखा को योगिराज भी बताया गया है ।

सागर महाराज के शिष्य गुलाब भगत [सं॰१६४६-२००३ वि॰] गाँव नोंबार [ता॰जंबुसर] के निवासी थे । उन्होंने अपने गुरू के प्रति भक्तिभाव प्रकाशित करते हुए उन्हें अखा का अवतार कहा है :

---

१. सागर, गुरू सुरराज प्रसादे, अलख अखा ओळख्यां जी ।
—दीवाने सागर, २, पृ॰१३४

२. अख्खा मिल्या गुरू पक्का मिल्या गुरू, घाट घड्ये को घडावन को ।
— वही पृ॰१३४

३. श्री अखाजीनी साखीओ : संपा॰केशवलाल ठक्कर, सं॰२००८ " श्री गुरूचरणे स्तुति."

आगे अखाजी भई समर्थ सागर
अनभे लहेरी रम्या ! सदगुरू
आप पोतेज अखाजी, पोतेज पियाजी[१]।

अर्थात् सागर महाराज ही पुराकाल में अखाके रूप में अवतरित हुए थे और आज भी अखा के ही अवतार रूप में विद्यमान है। इस उल्लेख से अखा और सागर के गुरू - शिष्य संबंध की सूचना तो मिलती ही है। इसके साथ ही साथ दोनों की एक रूपता की भी व्यंजना होती है। इन उल्लेखों के अतिरिक्त अखा का श्लेषात्मक उल्लेखकर्ताओं में अखा की परंपरा के संत वस्ता विश्वंभर का नाम प्रमुख है। ये संत गाँव सक्करपुर [जि. खंभात] के निवासी थे। खंभात के आसपास के खारवा लोग इनको अपना गुरू मानते हैं। वस्ता के गुरू का नाम विश्वंभर था। वस्ता के साथ उनके गुरू का नाम परंपरा से जुड़ जानेके कारण ये " वस्ता विश्वंभर " के नाम से प्रसिद्ध हैं। विश्वंभर के गुरू का नाम " अमरपुरी " था। वस्ता ने अपने गुरू के गुरू इस " अमरपुरी " के आदर में " अमरपुरी गीता " [सं. १८३१ वि.] की रचना की है। उसमें निम्न लिखित पंक्तियाँ आती है :

अखे पुरूष एक वृक्ष छे निरंतरमां छाये।
सदा शीतल निवास ते को काले तपे नाये[२]।

अर्थात् " अखे पुरूष एक ऐसा वृक्ष है जो निरंतर छाया हुआ है, जो कभी गरम नहीं होता और उसके नीचे निवास करने पर सदा शीतलता का अनुभव होता है। "

इस उल्लेख से भी महान संत के रूप में अखा की प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता सूचित होता है।

---

१. गुलाब भगतनी वाणी [अप्रकाशित। संग्राहक] प्रो. रमणलाल पाठक, पद. २४
२. वस्तानी वाणी. हस्त लिखित पोथी, १६ : संग्रा. डॉ. योगीन्द्र त्रिपाठी.

उपर्युक्त उल्लेखों से महत्त्वपूर्ण तथ्य यह निकलता है कि तीन सौ वर्ष पहले जन्मे अखा का प्रभाव विक्रम की बीसवीं शताब्दी तक कैसे धारावाहिक रूपसे चला आ रहा है। इससे अखा की बानी के प्रसार एवं प्रचार की व्यापकता व्यंजित होती है। गुजरात के छोटे से छोटे गाँव में भी कैसे अखा की बानी मार्गदर्शिनी एवं प्रेरणा पयस्विनी बनकर बही है इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

: ख : अखा से संबंधित स्थान और वस्तुयें

अखा ने यात्रायें की थी[१]। इसके अतिरिक्त जन विश्वास भी है कि उन्होंने 'काशी' जाकर विद्योपार्जन किया था। यहाँ हम अखा से संबंधित महत्त्वपूर्ण स्थानों की चर्चा करके कुछ ज्ञातव्य प्रस्तुत करेंगे।

जेतलपुर और अहमदाबाद

यद्यपि अखा ने अपनी रचनाओं में 'जेतलपुर' एवं ''अहमदाबाद' में से किसीका भी उल्लेख नहीं किया है तथापि उनके वंशज एवं जन विश्वासों से ज्ञात होता है कि अखा मूलत: जेतलपुर के थे। गुजरातमें दो प्रसिद्ध जेतलपुर हैं। बड़ौदा स्टेशन से उत्तर पूर्व में दो मील की दूरी पर 'जेतलपुर' नामक एक गाँव है और दूसरा अहमदाबाद से १०-१२ मील की दूरी पर। अहमदाबाद जिले का यह जेतलपुर दशक्रोई तालुका के अंतर्गत है। यह जेतलपुर 'अहमदाबाद से बंबई राष्ट्रीय मार्ग' पर स्थित है। इस गाँव के लोगों ने अपने गाँव की प्राथमिक पाठशाला का ई.स.१९५९ में जो शताब्दी महोत्सव मनाया उसके तत्त्वावधान में उन्होंने अपने गाँव की ऐतिहासिकता की परिचायक एक पुस्तिका

---

१. अ. तीरथ फरी फरी थाक्या चर्ण, तोय न पाम्या हरिने चर्ण ।।६२८ ।।
।छप्पा ।

आ. अक्षय रस:: अजब कला अंग -साखी -१२

प्रकाशित की थी । उस पुस्तिका में " जतीलपुर नी गढी "[१] बताया है । स्वामिनारायण संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी सहजानंद ने संवत् १८८२ चैत्र सुदी ३-४-५-६ और ७ को अपने वचनामृत में इस गाँव को " जयतलपुर " कहा है[२]। प्रस्तुत पुस्तिका में गाँव के मूल संस्थापक एवं उस के मूल नाम पर प्रकाश डालनेवाली एक जनवार्ता का भी विवरण मिलता है । उस जनवार्ता में बताया गया है कि वर्तमान स्वामिनारायण मंदिर की दक्षिण दिशा में अहीरों की बस्ती थी । उसमें 'जेता' नामक एक अहीरी रहती थी । उसी ग्वालिन के नाम पर प्रस्तुत गाँव को " जेतलपुर " कहा जाने लगा था[३]।

" मीराते - अहेमदी " में इस बात के उल्लेख मिलते हैं कि गुजरात में जब बादशाह जहाँगीर की हुकूमत थी तब उस हुकूमत के खिलाफ शाहजहाँ ने सन् १६२३ ई. में जहाँगीर की अनुपस्थिति में बड़ा भारी दंगा किया । उस समय अहमदाबाद के सूबा " सफीखान " ने जहाँगीर की ओर से शाहजहाँ के सैन्य को जेतलपुर के पास बड़ी भारी पराजय देकर उस हमले को बिलकुल नाकामयाब कर दिया था । जहाँगीर ने सफीखान के इस कार्य से खुश हो कर " सैफखान " का ओहदा दे कर उसका बड़ा आदर किया था । सैफखान ने अपनी इस जीत को चिर स्मरणीय बनाने के उद्देश्य से जेतलपुर में एक बड़ा बाग बनवाया था । जो " जीत बाग " और " सैफ बाग " के नाम से प्रसिद्ध हुआ[४]। यद्यपि इस समय वह बाग नहीं है तथापि गाँव के पश्चिम विभाग में उसके अवशेष देखे जा

---

१. जतीलपुरनी गढी: संपा. अंबालाल जेतलपुरिया : सं. २०१३, पृ. ७

२. वही. पृ. १०.

३. जतीलपुरनी गढी, पृ. १

४. वही. पृ. ६

सकते हैं। जन वार्ता के साथ-साथ प्रस्तुत गाँव के निवासियों के साथ की बात चीत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अखा इसी जेतलपुर के थे। गाँव के प्रतिनिधि लोगों के साथ अखा के घर के बारे में पूछने पर उनका कहना है कि अखा का घर प्रस्तुत गाँव की पश्चिम दिशा में गाँव के छोर पर था। गाँव के लोगों के इस मत की परीक्षा दो स्रोतों के आधार पर की जा सकती है : [१] उस गाँव में प्राप्य तत्कालीन एतद्विषयक दस्तावेजों के आधार पर तथा [२] खुद कवि की रचनाओंसे प्राप्य उल्लेखों के आधार पर। प्रयत्न करने पर भी मुझे उतने प्राचीन दस्तावेज नहि मिले किंतु अखा की रचनाओ में अंकित अहीरों के ढोरवाड़ा [मवेशीखाना][१] के तथा लोहारों के औजारों व कार्य[२] के विवरण आदि के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि अखा ग्रामीण वातावरण में पले थे। हो सकता है कि अखा गाँव के पश्चिम छोर पर भी रहे हों।

अखा का इसी जेतलपुर से अहमदाबाद जाना बताया जाता है। अखा के पिता उनके जन्मोपरांत करीव १६-१७ वर्ष पश्चात् नोकरी की तलाश में अहमदाबाद में आये थे। अखा, उनकी बहिन एवं उनके पिता का यह परिवार अहमदाबाद, खाड़िया विस्तार में आई हुई देसाई पोल में बसा था। इस पोल में सर चिनुभाई देसाई के मकान के समीप की कुआँवाली खिड़की में अखा का मूल मकान स्थित है। यद्यपि अखा के वंशजों ने प्रस्तुत मकान के कुछ भाग को

---

१. दृष्टव्य: अखाजीनी साखीओ, प्रेम प्रीछ अंग : साखी ४, ५

२. दृष्टव्य: अ. वही, आत्मा अंग -साखी - २

आ. वही, संसारी अंग -साखी -३

इ. अखाना छप्पा : १४१, १६७, २१४, २४२.

बेच दिया है और आज वहाँ एक विशाल भवन खड़ा है तथापि मूल घर के शेष एक खंडको अद्यापि " अखानो ओरडो " । अखा का कमरा । के नामसे पहचाना जाता है ।[1] अखा को " भगत " एवं "पहुंचे हुए महात्मा " के रूप में पूजने वाले कई श्रद्धालुजन आज भी उस मकान के दर्शन करने के लिए आते हैं ।

अखा के घर के बिलकुल सामने एक पुराना कुआँ भी है । जनश्रुति है कि संसार से खिन्न हो कर आत्मिक शांति की उपलब्धि की अभिलाषा से अहमदाबाद को छोड़ कर निकलने पर अखा ने अपने सब औजार इसी कुएँ में फेंक दिये । आज कल इस कुएँ के ऊपर पत्थर रख कर उसे बंद कर दिया गया है ।

जनश्रुतियाँ, अखा के वंशजों के साथ के वार्तालाप एवं उनकी रचनाओं के सम्यक् अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आत्मोपलब्धि हो जाने के पश्चात् जीवन के अंत तक अखा अहमदाबाद में ही थे ।

गोकुल

" दरशन वेष जोई बौ रहो, पछी गुरू करवाने गोकुल गयो "[2]।

इस पंक्ति से स्पष्ट ज्ञात होता है कि विभिन्न दर्शन- पंथों एवं वेष-भेषादि को देख चुकने के पश्चात् अखा गोकुल गये थे । वहाँ उस समय वैष्णवाचार्य गोकुलनाथजी [सं. १६०८-१६९७ वि.] विद्यमान थे । अपने समय के सबसे बड़े वैष्णवाचार्य होने के कारण उनकी ख्याति सारे गुजरात में फैल चुकी थी ।

---

१. गुजरात गवर्नमेन्ट ने " डोक्युमेन्टरी फिल्म के अंतर्गत गुजरात के नरसिंह महेता, मीराँ आदि संत कवियों के परिचय के साथ अखा का भी परिचय दिया है । उस फिल्ममें " अखाका कमरा " भी बताया जाता है ।

२. अखाना छप्पा : छप्पा १६७.

अत: यह सोचकर कि गोकुलनाथजी से दीक्षा ग्रहण करने से सच्ची शांति की अनुभूति होगी । अखा सर्व प्रथम गोकुल गये और गोकुलनाथजी को अपना गुरू किया[१]। किंतु जैसा कि बताया जाता है स्वयं गोकुलनाथजी भी अखा के विद्युबद्ध मन को शांत नहि कर पाये[२]। अत: कुछ समय पश्चात् गोकुल और गुरू गोकुलनाथजी -दोनों को छोड़ कर अखा प्रमुख भारतीय ज्ञान क्षेत्र 'बनारस' गये ।

बनारस

किंवदंति है कि अखा ने यहाँ आकर मणिकर्णिका घाट पर ब्रह्मानंद नामक एक संन्यासी के दर्शन किए । उन की महानतासे प्रभावित हो कर गुरू रूप में स्वीकार कर उनसे वेदांत के ग्रंथों का अध्ययन भी किया[३]। निम्नलिखित पंक्तियों के आधार पर भी कवि के काशी [अमरापुरी- वाराणसी] निवास का समर्थन प्राप्त किया जा सकता है:

१. " अमरापुरी " निज घाटमां रे त्यांहां छे तेहनो वास

कर जोडीने अखो कहे रे, स्वा निरमल हरिदास[४]।

\+ + +

२. जो मुक्ति वांछे मानवी तो ए काशी ने जाह्नवी[५]।

\+ + +

---

१. गुरू कीधा में गोकुलनाथ..... । वही. १६८

२. अखा ने भी कहा है: मन मनावी सगुरो थयो, विचार नगुरानो नगुरो रह्यो । -वही. १६८

३. जूनु नर्मगद्य : पृ. ४५७

४. अखानी वाणी पद : १२६

५. वही. पद, ८२

३. ए अकल कला कलत नहीं पंडित, जो शौच पाले औ सेवे काशी[१]।

+ + +

४. मद्र, मरूआड वाराणसी, श्वपच गृह देवाल[२]।

मद्र

'अप्रसिद्ध अक्षय वाणी' अर्थात् अखा कृत काव्यो, भाग २ के टीका विभाग में सागर महाराज ने ऐसा उल्लेख किया है कि " ब्राह्मणेतर अखा के हाथों वेदांतादि ग्रंथों का निर्माण एवं प्रचार होने लगने पर वाराणसी के संन्यासी, दंडी और अन्य वर्णाश्रम धर्मावलंबी कट्टर ब्राह्मणों ने अखा का घोर विरोध किया । उन के कतिपय हस्त लिखित ग्रंथ गंगा में फैंक दिये गये । इन लोगों के साथ साथ जिज्ञासुओं का एक ऐसा भी वर्ग था जो बड़ी ही श्रद्धा एवं भक्ति से अखा का आदर करता था । यह वर्ग पंजाबी और मारवाड़ी मुमुक्षुओंका था । अखा ने अपने इन पंजाबी शिष्यों के साथ उस प्रदेश का दौरा किया । पंजाब की ओर के उस दौरे का ही यह परिणाम है कि उनके " फूलणा " में हिन्दी-पंजाबी-उर्दू मिश्र भाषा " का व्यवहार दृष्टि गोचर होता है[३]।

अखा के पंजाब प्रदेश गमन के इस कथन का समर्थन अन्य स्रोतों से भी होता है । पहली बात तो यह है कि स्वयं अखा ने उस प्रदेश का " मद्र " [वर्तमान पंजाब की ओर का एक प्राचीन जनपद - पांडु पत्नी माद्री का जन्म स्थान] नाम से एकाधिक बार उल्लेख किया है[४]।

---

१. वही.पद ५०

२. अक्षय रस : एक साल अंग - साखी -४

३. अप्रसिद्ध अक्षय वाणी भाग-२.टीका विभाग पृ.२६६-२७०

४. अ. सप्तपुरी ने मद्र मारूआड, सर्व सरखुं ज्यारे भागी जाड्य। -अखानां छप्पा -३६५

आ. अक्षय रस : एक साल अंग साखी -४

दूसरी बात यह है कि " बहज्ञानी अखा भगतना छप्पा " [वि.सं.१८८७] के संपादक पूजारा कानजी को सिंधी लिपि में लिखी अखा की रचनायें किसी खोजा मित्र के पास से मिली है[१]। तीसरी बात यह है कि लेखक को यह सूचना मिलने पर कि राजस्थानांतर्गत " किशन गढ़ " [मदन गंज] में " हंस निर्वाण आश्रम " है जिसमें अखा का काफी साहित्य अप्रकाशित रूप में पड़ा है, मैंने वहाँ जा कर उस आश्रम के स्वामीजी से मिल कर उनको सारी बातों से अवगत किया । उन्होंने मुझसे कहा कि उनका यह आश्रम शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित संन्यासियों की प्रणालिका के अंतर्गत आता है । इसके सभी संत संन्यासी ही है । यह " तीर्थ हंस निर्वाण आश्रम " पहले " सिंध प्रदेश के थरपारकर जिले के 'टण्डा जान महम्मद' शहर में प्रोया नदी के तट पर था ।" वहाँ प्रस्तुत आश्रम बड़े विशाल रूप में था । आश्रम का निजी बड़ा पुस्तकालय भी था । इस आश्रम के आदि पुरूष श्री मनेश्वर स्वामी और उनके शिष्य मोतीश्वर तथा उनके शिष्य भाण साहब तथा उनके शिष्य श्री हंस स्वामी आदि सभी सुनार थे । अखा भी सुनार थे । अत: इन संतों ने उस प्रदेश में से जहाँ कहीं से भी अखा की बानी मिल सकी ले कर आश्रम में इकट्ठी की । आश्रम के संस्थापक 'श्री हंस स्वामी' ने सारे वेदांत को सहज रूप से आत्मसात कर लिया था और यदा-कदा मौज आने पर शंकराचार्य, कबीर एवं अखा की बानी स्वयं पढ़ते और अपने शिष्यों को पढ़ाते भी थे ।

"हंस स्वामी" ने कबीर और अखा की कुछ बानियों की टीका भी लिखी थी । किंतु सन् १९४७ में भारत पाकीस्तान के बँटवारे से उत्पन्न जातीय दंगे में सारे आश्रम को नष्ट कर दिया गया । इसी भगदड़ के बीच अखा का सारा

---

१. अखो - एक अध्ययन, पृ.४४

साहित्य भी पता नहीं कहाँ चला गया । स्वामीजी ने प्रस्तुत विवरण के समर्थनमें अपने मूल सिंघ आश्रम से प्रकाशित " भजन विलास " और " श्री शब्द-सागर " नामक ग्रंथ दिये जिनमें प्रस्तुत संप्रदाय के संतों की बानी के साथ अखा के भी दो पद प्रकाशित हुए हैं । " भजन विलास " में संकलित उन दो पदों में से निम्न लिखित[१] हिन्दी पद गुजरात से प्रकाशित अखा की रचनाओं के किसी भी संग्रह में नहीं है । प्रस्तुत संप्रदाय के मोतीराम, भाण साहब आदि संतों ने अपने पदों में नरसिंह मेहता, मीराँबाई, नामदेव, कबीर आदि के साथ-साथ " पूर्ण ज्ञानी", "स्वानुभवी " एवं " अद्वैत ज्ञानी " संत के रूपमें

भजन – ३ राग आशा

१. साधो भाई परिब्रह्म की गत न्यारी, सो मैं किया साध विचारी ।।टेक।।
खेल चले ख्याली ने भीतर, ख्याली खेल में नावे ।
भेद छेद मुद्रा के मांही, मूल घटयो नहीं जावे ।।१।।
जिस चेतन का सकल पसारा, सो चेतन घर ऐसे ।
बहु विधि रूप दर्पण में दरसे, भीतर भासन कैसे ।।२।।
सर्वातीत सर्व के मांही द्वैत सहित अद्वैता ।
पांच पुरूष या एके नामे आपोई आप पूरता ।।३।।
कारज कारण नहीं कोई करता है चेतनघन सारा ।
अकथ कथा सोहे अणलिंगी, कहता " अखा सोनारा " ।।४।।

– भजन विलास – पृ० १०८

अखा का भी एकाधिकार स्मरण[1] किया है।

<u>मारवाड़</u>

"मारवाड" के अनेक उल्लेख एवं कई प्रचलित मारवाड़ी-- राजस्थानी शब्द के प्रयोग मिलने के कारण अखा की मारवाड़ प्रदेश की यात्रा का समर्थन होता है[२]।

अ. : <u>मारवाड़ का उल्लेख</u>

मद्र "मारवाड" वाराणसी श्वपच गृह, देवाल
सदा मते आकाश के शुद्ध अशुद्ध एक साल[३]।

सप्त पुरीने मद्र "मारवाड" सर्वे सरखुं ज्यारे भागी जाड्य[४]।

---

१. अ : एसी बलवंती ईस की माया
सारा संसार पकड़ ही बांधा, मोटा मुनीजन खाया ।।टेक।।
ब्रंहा विष्णुं मुख भीतर राख्या, सब कूं किया बेहाला ।
दास कबीर निर्बल होये छूटा, आप हुआ कंगाला ।।४।।
अखा साहिब समर्थ हुवा, बहुत किया बख्खिारा ।।
ऐसी माया कूं मुंड़ी राखी, शिर पर चरण ही धारा ।।५।।
-- म.वि.भाण साहब की वाणी, भजन २१ पृ.७६

आ: दादू कबीर नानक नामा ने बहु विध महिमा गाई हां
भाण रवि लद्दा लही देवा साहिबा, अखा प्रकाश भये भाई हां ।
-- श्री श.सा.पृ.२५०

इ. दत्त गोरख ये देस बताया, पुन: अखा सोनारा ए
रवि कबीर नानक उहां पगे और हजारा ए ।
-- श्री श.सा.पृ.२६१

२. विशेष अध्ययन के लिए दृष्टव्य: प्रस्तुत प्रबंधका अध्याय ७

३. अक्षय रस : एक लक्ष रमणी

४. अखाना छप्पा : विभ्रम अंग -३६५

आ : शबुद प्रयोग

"बना" शबुद दुल्हा के अर्थ में मारवाड़ी में प्रयुक्त होता है । इसका सुंदर प्रयोग निम्न लिखित पंक्ति में देखा जा सकता है । यथा:

ज्यम वरघोडे मेल्या बहु वना, पलकेक रहीने थाये फना[१] ।

इन स्थानों के अतिरिक्त डॉ. कृष्णलाल झवेरी अखा की प्रयाग-यात्रा की सूचना देते हैं जिसकी पुष्टि अखा की रचनाओं में प्राप्त निम्न लिखित उल्लेखों से भी की जा सकती है[२]।

कहानवा

प्रस्तुत स्थान बड़ौदा जिले के जंबुसर तालुका में आया है । अखा की परंपरा के संतों का यह गादी-स्थान है । इस समय यहाँ अखा की शिष्य परंपरा में नवें महाराज श्री धर्मानन्दजी विद्यमान हैं । यहाँ भगवान शंकर का एक बड़ा मंदिर है । इस गाँव में और इसके इर्द गिर्द के "नोंघणा" "चित्राल" आदि अन्य गाँवों की भजन मंडलियों में आज भी अखा के हिन्दी-गुजराती भजन गाये जाते हैं । लेखक ने स्वयं उस जनपद की यात्रा करके अखा के भजनों को सुना है[३]। इस स्थान में सर्व प्रथम अखा की प्रणालिका के पाँचवें संत कल्याणदासजी आये थे और तभी से अखा की परंपरा के शिष्यों के प्रमुख स्थान के रूपमें इस स्थान को महत्त्व दिया जाता है। सागर महाराज को स्वयं अखा एवं उनकी परंपरा के लालदास, हरिकृष्ण महाराज, जीतामुनि, कल्याणदास, पूर्णानंद तथा वस्ता विश्वंभर की रचनाओं की कई हस्तलिखित पोथियाँ यहीं से उपलब्ध हुई थी[४]। अखा की पूरी परंपरा का निर्देश करनेवाले "अक्षयवृक्ष" की एक काफी पुरानी हस्तलिखित प्रति आज भी यहाँ सुरक्षित है ।

---

१. अखाना छप्पा : छप्पा ५६०

२. गंगा प्रयाग गोदावरी माहातीर्थ तीरथराज
ते नहातां फलतो प्रगटे, जो अखा जपिये महाराज । प्रेम प्रीछ अंग, साखी ६

३. ऐसी एक और भजन मंडली की सूचना स्व. महादेवभाई देशाई ने भी दी है।
-दृष्टव्य : अखो एक अध्ययन पृ. ५-६

४. दृष्टव्य: "संतोनी वाणी" का उपोद्घात

अखा के चित्र

अखा ने दादू, करूणासागर आदि संतों की भाँति न तो अपने किसी पंथ या संप्रदाय की स्थापना की है न तो अपने को किसी का शिष्य बनाकर दूसरों को शिष्य बनाया है[१]। कबीर भी पंथ- संप्रदायादि के कड़े आलोचक थे तथापि आगे चलकर उनके शिष्यों ने उनके नाम " कबीर पंथ " प्रारंभ कर दिया और उन्हें " आदि गुरू " रूपमें स्वीकार कर उनके चित्र को गादी पर स्थित कर उनके पूजन-वंदनादि की एक स्वतंत्र पद्धति भी प्रारंभ कर दी । किंतु न तो स्वयं अखा ने और न तो उनके किसी शिष्य ने पंथ निर्माण किया[२]। यही कारण है कि आज कबीर के अनेक चित्र प्राप्त होते हैं जब कि अखा का प्राचीन एवं प्रामाणिक एक भी चित्र जेतलपुर, अहमदाबाद, कहानवा आश्रम या अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता ।

गुजरात के यशस्वी कलाकार श्री रविशंकर रावल ने अखा की रचनाओं के आधार पर तथा उस युग के पहनावे की परिपाटी को ध्यान में रख कर अखा के सुन्दर चित्र तैयार किये हैं ।

अखा के संबंध में प्रचलित जनश्रुतियाँ

गुजरात में अखा के संबंध में प्रचलित जनश्रुतियों में से कुछ जनश्रुतियों का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है । यहाँ हम एक दो ऐसी महत्त्वपूर्ण किंवदंतियों का परीक्षण करेंगे जो अखा के जीवन वृत्त लेखन में सहायक हैं ।

---

१. शिष्य अखा का को नहीं गुरू सारा संसार
होते होते हो गई, समझे आया पार ।।३।। शिक्षांग -साखी

२. मंदिर की मनसा नहि जाकुं कंदर सेवा तो ताहि भली है
मंदिर कंदर दोउ नहीं जाहां बुझ की सुझ तांहाकु चली है ।
पंथ चले सो पंथ समारे पक्षीकुं तो अटक टली है ।।७४।। संतप्रिया
– अक्षय रस.

जनश्रुति है कि अखा की एक जमना नाम की धर्मभगिनी थी । उसे अखा के ऊपर बहुत विश्वास था । अपने पैसे आदि अखा के पास ही सुरक्षा की दृष्टि से रख छोड़ती थी । एक दिन बहन को अखा के पास रखे हुए अपने ३००) उठा लेने का विचार आया । काफी सोच विचार के पश्चात् अपने लिए सोने की एक कंठी बनाने के लिए उसने अखा से कहा । अखा ने बड़े ही प्रेम पूर्वक उस कंठी में अपनी तरफ से सौ दो सौ रूपये का सोना और जोड़ कर एक सुंदर कंठी तैयार की । किंतु लोगों की कानाफूसी के परिणाम स्वरूप अखा पर अविश्वास हो जानेके कारण उसने अन्य सुनार के पास जा कर कंठी की परख करवाई । परख करने पर वह कंठी ३००) से भी अधिक मूल्य की सिद्ध हुई । इससे जमना को अखा के ऊपर कंठी में छेद का कारण पूछने पर घबराती-सी जमना ने सारी वास्तविकता जतला दी । इस अत्यंत प्रिय धर्मभगिनी के द्वारा भी अपने ऊपर किये गये अविश्वास के कारण अखा के मन में संसार के लोगों के प्रति घृणा एवं विरक्ति के भाव उत्पन्न हुए । अखा ने स्त्रियों की घोर निंदा की है । इस घृणा भाव के पीछे हो सकता है अखा के जीवन का कोई ऐसा ही कटु प्रसंग रहा हो । प्रस्तुत पद में अखा ने स्त्री को अविद्या का मूल कह कर उसके " गुण प्रपंचों " को अपार बताया है । मन्मथ के बाण मार कर पुरूष को " गुरू गोविंद " की भक्ति से वही अलग करती है । वह काल रूपिनी, कामिनी, दामिनी एवं तलवार समान है । अपनी कामाग्नि के अंदर वह अपने-पर सभी को जला देती है । मधुर बोलनेवाली वह वास्तव में शाकिनी, सर्पिणी एवं वाघिन के समान है । वह निर्लज्ज एवं त्रिलोक को मोहनेवाली है । अखा अंत में स्त्रियों के ऐसे प्रपंचों से बचने का उपाय बताते हुए कहते हैं कि त्रिया के तिमिर से वही बच सकते है जिन के अंतर में गहरा परब्रह्म प्रेम एवं दृढ़ वैराग्य

मरा हो[१]।

अखा के विरक्त हो जाने के अन्य कारणों में एक और किंवदंति प्रचलित है कि अखा के जन्मते ही उन की माता स्वर्ग सिधार गईं। ऐसी हालत में अपने पिताजी के साथ अहमदाबाद आने के कुछ काल पश्चात् पिताजी, दोनों पत्नियाँ और सहोदरा आदि पूरे परिवार के थोड़े थोड़े समय के अंतर पर एक साथ चल बसने पर अखा बहुत खिन्न हो गए। इन दुर्घटनाओं से वह जगत के मिथ्यात्व एवं दुखपूर्ण होने के विचार पर और दृढ़ हुए[२]।

---

१. अविद्यानुं मुल ते तन त्रिया तणुं, जेना गुण प्रपंचनो पार नावे।
एनी संगते विद्या सह विसरे, शुध्ध विचार चित्तमां न आवे।
गुरू गोविंदथी एज अलग करे, मनमथ गुणनां बाण मारे।
ए अग्नि बुझाय महाजलना जोगथी, प्रेम वैराग्यथी शुध्ध वारे। १।
तेज प्रताप त्रिलोकमां नव रहे, रवि शशि तेज ज्यम राहु ग्रासे
कालनुं रूप ते कामिनी दामिनी, महा शूरवीरनो नियमनासे। २।
नार तलवार ते नव गणो नेहने, पर हाथ चढे त्याहारे तन टाले।
आपणुं पारकुं अग्नि ना ओलखे, बल वधे त्याहरे सघवाले। ३।
शाकणी, सायणी, वेह्वंती वाघणी घुंघटमां कामनां धेन गाजे
मधुरीशी वाणी तो मुख बोले घणी, मद मेंगल तणुं जूथ मागे। ४।
सगुणानी चारिणी, कल्याणकारिणी, मद्दिका मारिणी मान महा ले
मद्दा करे त्यां मीति आणो नहि, विषय विकर करी प्रेमे पाळे। ५।
नफट निर्लेज निज लाभे करी घुंघट, माहि त्रिलोक घाल्युं
ए अबला पण बल बहु भातनुं नर तणुं जोर त्यां नव चाल्युं। ६।
अजितने जितवा कोइक समर्थ्य छे। गुण गंभीर महाब्रह्म कहावे
भणे अखो परम प्रतीतनुं पारखुं त्रियानुं तिमिर त्यां निकट नावे। ७।
-अखानी वाणी पद-५७

२. कवि चरित : भाग १-२ के०का०शास्त्री.पृ.५६४

एक अन्य जनश्रुति यह भी है कि अखा जहाँगीर बादशाह द्वारा स्थापित टकशाल में किसी अच्छे पद पर थे। किंतु साथियों के विद्वेष के कारण उनके ऊपर यह इल्ज़ाम लगाया गया कि अखा सोने चाँदी के सिक्कों में अन्य हलकी धातु मिलाते है। इस आरोप के कारण उन को थोड़े दिन के लिए कैदखाने में भी रहना पड़ा। किंतु निर्दोष सिद्ध होने पर उन्हें कैद से मुक्ति मिली[१]। कैद से मुक्त होने के प्रसंग का संकेत देने वाली भोजा भगत की रचना के उदाहरण अन्यत्र दिया जा चुका है।

अखा की धनाढ्यता को ले कर भी एक जनश्रुति का उल्लेख डॉ॰ झवेरी ने स्वरचित गुजराती साहित्य के इतिहास में किया है। गृह त्याग कर अखा सच्चे गुरू की शोध में जब गोकुल में वल्लभाचार्य के मंदिर में महाराज के पास गये तब उन्हें यह अनुभव हुआ कि उन का जो सत्कार हो रहा है वह उन की समृद्धि के कारण होता है। अत: जब उन को प्रसाद लेनेके लिए कहा गया तब बैठने के लिए उन्हें जो आसन के रूप में पाटला दिया गया था उस पर अपनी मूल्यवान पगड़ी और अन्य वस्त्र रख कर स्वयं नीचे बैठे[२]।

यद्यपि सभी किंवदंतियाँ पूर्ण रूपेण सत्य नहीं होती हैं, किंतु उनका आधार सत्य का आश्रय अवश्य लिए रहता है। कोई आश्चर्य नहीं अखा के जमना नाम्नी धर्मभगिनी रही हो और उस के साथ ऐसी कोई घटना घटी भी हो। टकशाल की नोकरी का समर्थन तो उन की हिन्दी गुजराती रचनाओं में प्रयुक्त टकशाल एवं उन की पारिभाषिक प्रक्रिया एवं साधनों के उल्लेखों से अवश्य मिले जाते है। ऐसे उल्लेखों का उपयोग यथा-स्थान किया गया है।

---

१. कवि चरित : भाग १-२ के॰का॰शास्त्री : पृ. ५६४
२. गु॰सा॰ना.मा॰स्त॰ स्तं. अने मा॰स्त॰ स्तंभो : पृ. ६६

पिछले पृष्ठों में अखा के जीवन से संबंधित बहि:साक्ष्य का परीक्षण करने पर जो तथ्य निकले हैं उनके तथा अंत:साक्ष्य की सामग्री के आधार पर यहाँ अखा के जीवन वृत्त के निम्नलिखित अंगों पर विचार किया जायेगा ।

१. जन्म और निधन

२. नाम, जाति और व्यवसाय

३. पूर्वज और माता पिता

४. भ्राता भगिनी

५. पारिवारिक जीवन

६. वैराग्य और गृहत्याग

७. पर्यटन और यात्रा मार्ग

८. गुरू

९. अध्ययन

१०. शिष्य परंपरा

११. स्वभाव, उपदेश और विरोध

१२. निष्कर्ष

१. जन्म :

अखा की जन्मतिथि और समय निर्धारण एक जटील समस्या है क्योंकि [१] न तो स्वयं अखा ने इस संबंध में कुछ भी कहा है, [२] न तो उनके सम सामायिक समझे जानेवाले इतिहासकारों ने एतद् संबंधी कोई उल्लेख किए हैं और [३] न तो विभिन्न विद्वानों की एतद् विषयक स्थापनाओं में[१] कोई मत ऐक्य है। अतः कवि की रचनाओं के साथ गुजरात के एवं उत्तर भारत

क्र.	लेखक	वि.सं.	ई.स.	संदर्भ कृति
१	अ. डाह्याभाई पंडित	१७०५ में विद्यमान		कवि चरित पृ.७२ [सं. १९२५]
	आ. नर्मदाशंकर दवे	१७०५ में विद्यमान		जनुं नर्म गद्य, पृ.४५७ [सन् १८६५]
	इ. अंबालाल जानी	१६५३ में जन्म		अखा भक्त अने तेमनी कविता
	ई. कृष्णलाल झवेरी		१६१५-१६७५	गु.सा.ना.मा.स. अने वधु मा.सू.स्तंभ, पृ.६५ [सन् १९५८]
	उ. नरसिंहराव दीवेटिया	१६७१-१७३०	१६१५-१६७४	गु.भाषा अने साहित्य पुस्तक २ पृ.१९ [सन् १९५७]
	ऊ. नर्मदाशंकर महेता,	१६४९ में जन्म	१५९३ अथवा १६०० में जन्म	अखा कृत काव्यो भाग १ [सन् १९३१] पृ.४
	ए. स्वामी स्वयंज्योति	१६५३ में जन्म		"अखानी वाणी" में "अखानो परिचय" विषय-क लेख पृ.२८[सं.२००६]
	ऐ. के.का.शास्त्री	१६४९ में जन्म अथवा १६५३ जन्म		कवि चरित भाग १-२ [सन्१९५२]पृ.५६२
	ओ. उमाशंकर जोशी		१६०५-१६५०	"अखाना छप्पा" पृ.२१ [१९६२]
	औ. कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह		१६०० के आस पास जन्म	"अखायरस" पृ.२४ [सन् १९६३]
	अं. परशुराम चतुर्वेदी		१६४८-१७३०	उत्तरी भारत की संत परंपरा [सं.२०२१] पृ.४७०

के संतों की रचनाओं का अनुशीलन करते करते जो मूल्यवान सामग्री उपलब्ध हुई है उस के आधार पर प्रस्तुत प्रश्न पर पुनर्विचार करना अनिवार्य हो जाता है ।

निम्नलिखित चार प्रकार के स्रोतों की सहायता से प्रस्तुत समस्या पर विचार किया जा सकता है:

अ. समकालीन राज्य शासन और अखा

आ. अखा द्वारा किये गये अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन उल्लेख

इ. कवि की कृतियों का रचना काल और

ई. कवि की रचनाओं में उपलब्ध एतद्संबंधी महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ ।

समकालीन राज्य-शासन और अखा ।

जहाँगीर ने सं. १६७४ वि. [सन् १६१८ ई] में टकसाल की स्थापना अहमदाबाद में की[१]। जैसा कि जनश्रुति बताती है, टकसाला की स्थापना के एकाध वर्ष में अखा ने वहाँ नौकरी का स्वीकार किया । कहते हैं, टकसाल में अखा के अच्छे पद प्राप्त करने पर उन के प्रतिस्पर्धियों ने उन पर यह आक्षेप लगा कर कि अखा ऊँची धातु में हलकी धातु मिश्र करते हैं, उन्हे कैद में डलवाया । किंतु निर्दोष साबित होने पर कैद मुक्त हो कर अखा टकसाल का त्याग कर सच्ची शांति की खोज में निकल पड़े । हो सकता है इस घटना चक्र में तीन चार वर्ष बिते हों । अत: सं. १६७४ वि. के चार पाँच वर्ष पश्चात् अखा गोकुल गये हों ।

आ. अखा की रचनाओ में ऐसी पंक्तियाँ मिलती है जिन में उन के पूर्व वर्ती और समकालीन संतों के उल्लेख हैं :

---

१. गुजरातनुं पाटनगर अमदावाद : रत्नमणिराव जोटे :सन् १९२८.पृ.८५

क. चमार जुलाहा नाई धुनिया दादु रैदास सेना कबिराई[१]।

ख. निर्गुण कथतां कबीरने प्रभव्यो, सगुण कहेतां नरसै महेतो[२]।

ग. गुरू कर्या में गोकुलनाथ घरड़ा बळदने घाली नाथ[३]।

इन पंक्तिओं में "नाई सेना" [१४ वीं विक्रमी शताब्दी का उत्तरार्ध और १५ वीं का पूर्वार्ध[४]] "चमार रैदास" [१५ वीं विक्रमी शताब्दी से १६ वीं के अंत तक[५]] "जुलाहा कबीर" [१५ वीं विक्रमी शताब्दी[६] के द्वितीय चरण से १६ वीं के प्रथम चरण तक] "धुनिया दादू" [सं. १६०१-१६६० वि.[७]], सगुण लीला गायक "नरसिंह महेता" (सं. १४७२-१५३८ वि.[८]] और वैष्णवाचार्य गोकुलनाथ" [सं. १६०८- १६९७ वि.[९]] के उल्लेख किये गये हैं।

इन संतों के उपलब्ध जन्म-मरण समय पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि दादू और गोकुलनाथजी इन सब संतों के पश्चात् के हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अखा, दादू और गोकुलनाथजी के पहले तो नहीं ही हुए हैं और जैसा कि "गुरू कर्या में गोकुलनाथ "वाली पंक्ति बताती है कि अखाने गोकुलनाथजी को अपना गुरू किया है, गोकुलनाथजी और अखा दोनों समकालीन थे। दादू और गोकुलनाथजी समय की दृष्टि से एक दूसरे के समकालीन

---

१. अक्षय रस: संतप्रिया- छंद २१

२. अखानी वाणी : पद ८३

३. अखाना छप्पा : छप्पा १६८

४. उत्तरी भारत की संत परंपरा : परशुराम चतुर्वेदी: सं. २०२१, पृ. २३५

५. वही पृ. २४३

६. वही. १३७

७. वही. ४६१

८. वही पृ. ८७

९. अखाना छप्पा: प्रस्तावना पृ. १३

है । अतः निश्चित हो जाता है कि दादू, अखा और गोकुलनाथजी तीनों एक ही समय में विद्यमान थे । यहाँ तीनों के संबंध-सूत्रों पर विचार किया जायगा ।

अखा और गोकुलनाथजी

१........ पछे गुरू करवा गोकुल गयो [१]।

२. गुरू कर्या में गोकुलनाथ[२] ।

इन पंक्तियों में गुरू करने के हेतु अखाने " गोकुल गमन " एवं गोकुलनाथजी [सं. १६०८-१६६७ वि.] को अपना गुरू बनाने के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं । परंतु जैसा कि टकसाल में अखा के साथ घटी दुर्घटना पर, विचार कर यह स्थापित किया गया है कि सं. १६७४ वि. के तीन चार वर्ष पश्चात् अखा अहमदाबाद को छोड़ कर सच्चे गुरू की शोध में निकल पड़े, अखा और गोकुलनाथजी का यह संबंध सं. १६७४ वि. के चार पाँच वर्ष पश्चात् ही हुआ हो सकता है ।

वैष्णवों के माला-तिलक उतरवा देने के लिए शाही फरमान की ~~फरमान की~~ सहायता से चिद्रूप संन्यासी द्वारा उपस्थित किये गये उपद्रव से [३] गोकुलनाथजी के निवृत्त होने के पश्चात् ही अखा और गोकुलनाथजी की भेंट का स्वीकार करना अधिक समीचीन लगता है: क्यों कि " माला-प्रसंग " के कारण उन दिनों गोकुलनाथजी के निवास का कोई स्थान निश्चित नहीं था । सं. १६७७ वि. तक वे प्रायः दिल्ली, आग्रा, मथुरा और काश्मिर की यात्रा में ही व्यस्त रहे । सं. १६७८ वि. के पूर्ण होते होते इस उपद्रव के शांत होने के पश्चात् गोकुलनाथजी मथुरा को छोड़ कर गोकुल में स्थायी रूप से रहने लगे । और जैसा

---

१. अखाना छप्पा : प्रपंच अंग -१६७

२. वही. १६८

३. श्री गोकुलेशनुं जीवन चरित्र : मगनलाल गांधी, सं. १६७८, पृ. १५५ से १८५

कि अखा ने अपने गोकुल गमन की ही बात कही है, अखा और गोकुलनाथजी का मिलन सं. १६७६ वि. के आस पास गोकुल में ही हो सकता है।

दादू और अखा

अखा के निवासस्थान " अहमदाबाद " में जन्में संत दादू अपने जन्म संवत १६०१ वि. के कुछ समय पश्चात् देश भ्रमण करते करते सं. १६३० वि. से सांभर-राजस्थान में मृत्युपर्यंत रहे।

अखा की रचनाओं में दादू के केवल एक बार के एवं सामान्य नामोल्लेख के अतिरिक्त दोनों के संबंध सूचक अन्य कोई उल्लेख नहीं मिलते। अत: इन दोनों के प्रत्यक्ष मिलन-संबंध के बारे में प्रमाण रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

अखा और सुन्दरदासजी

किंतु दादू के शिष्य छोटे सुन्दरदास [सं. १६५३-१७४५ वि.] और अखा की भेंट अवश्य समर्थित की जा सकती है। क्योंकि दोनो के अध्ययन विषय आख्यायिकाओं में काफी साम्य है और दोनों की रचनाओं में भी अनेक पंक्ति तक का साम्य है। दोनों का क्रमश: अवलोकन किया जाएगा।

सुन्दरदासजी के अध्ययन काल दरमियान उनके " ज्ञान समुद्र " की रचना से संबंधित आख्यायिका अखा के अध्ययन विषयक आख्यायिका से विशेष मिलती जुलती है। पहले सुन्दरदासजी से संबंधित आख्यायिका का परीक्षण करेंगे।

प्रस्तुत आख्यायिका पुरोहित हरिनारायण शर्मा संपादित " सुन्दर ग्रंथावली " [प्रथम खंड] में उल्लिखित है। दादूपंथी महंत गंगाराम ने प्रस्तुत आख्यायिका, सुन्दर ग्रंथावली के संपादक महोदय को बताई थी।

इस के नोट्स श्री हरिनारायण पुरोहित के पुस्तकालय में संगृहीत है । वह आख्यायिका इस प्रकार है : एक षाट्शास्त्री और प्रखर पंडित काशी में कथा किया करता था । उसकी कथा में स्वामी सुंदरदासजी भी जाया करते थे और बहुत ध्यान और मानपूर्वक कथा को सुना करते थे और पंडित से कथा हो चुकने पर बड़ी नम्रता से शंकाओं को पूछा भी करते थे । पंडित को पंडित पहिचाने । कथा वाचक ने समझ लिया कि शास्त्र का सच्चा ज्ञाता और समझनेवाला यही महात्मा है । एक दिन ऐसा हुआ कि कारणवश सुंदरदासजी कथा में देर से पहुंचे । वे न आये तब तक उस पंडित ने कथा का प्रारंभ नहीं किया । जब श्रोताओं ने पंडितजी से कहा कि आप कथा का प्रारंभ क्यों नहि करते ? तब उस पंडित ने कहा कि अभी श्रोता नहीं आये । थोड़ी सी देर में गुदड़ी ओढ़े सुंदरस्वामी आ चुके तब पंडितजी ने कथा आरंभ कर दी । इस ही प्रकार फिर एक ~~बार~~ दिन सुंदरदासजी को अबेर हो गई तो उनके लिए पंडितजी ने कथा को रोकी रक्खी । जब अन्य श्रोताओं ने पंडितजी से कहा कि कथा का समय जा रहा है आप कथा प्रारंभ कीजे । तब पंडितजी ने कहा कि अभी श्रोता नहीं आये । इतने में वही गुदड़ीवाला साधु [सुंदरदासजी] आया और एक ओर बेठ गया । तब पंडितजी ने कथा को कहना प्रारंभ कर दिया । श्रोताओं ने पहिले तो यह समझा था कि कोई राजा बाबू या पंडित या बड़ा पुरूष आनेवाला होगा जिसके अर्थ कथा रोकी गई । परंतु दो बार जब इस गुदड़ी वाले साधु के आने पर कथा होने लगी तब तो श्रोताओं से रहा नहीं गया । पंडितजी से कहा कि आपने कथा को किस श्रोता के लिए रोकी थी । कोई बड़ा

आदमी तो आया नहीं । तब पंडितजी ने कहा कि बड़ा और सच्चा श्रोता नहीं आया था इस कारण कथा नहीं कही थी । जब वह आ गये तब कथा प्रारंभ की गई । ये गुदड़ीवाले महात्मा बड़े ही श्रोता हैं जिनके लिए हम को ठहरना पड़ा। उस पर श्रोताओं ने आवेश में आकर कहा कि ये तो बड़े श्रोता हैं और हम तो वैसे ही आ गये ! इस पर पंडितजी ने कहा कि आप भी सब ही श्रोता हैं इसमें संदेह नहीं परंतु आपके सुनने में और इनके सुनने में भेद है । तब पंडितजी को श्रोताओं ने बड़े जोर से कहा कि क्या भेद है ऐसी विशेष बात इस गुदड़ीवाले में क्या है ? उस पर पंडितजी ने कहा कि आप ठीक कहते हैं । परंतु जो कथा कही गई है उसका अनुवाद आप करके सुनाओ । अधिक नहीं तो आज की कथा का ही अनुवाद कर दो । यह बात सुनकर सब श्रोता चुप हो रहे । तब पंडितजी ने कहा कि अब क्या कहते हो । तब श्रोता बोले कि खैर हम तो न कर सके आप अपने बड़े श्रोताजी से ही अनुवाद करा लीजे । तब पंडितजी ने सुंदरदासजी की और देखा तो सुंदरदासजी ने हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता से कहा कि आज की कथा का ही नही, मैं तो प्रारंभ ही से सारी कथा का अनुवाद करके लाऊँगा । फिर स्वामी सुंदरदासजी ने अपनी कुटी पर गंगा तट पर जा कर कथा का अनुवाद छंदों में किया और इसकी को " ज्ञान समुद्र " नाम दिया और थोड़े ही समय [वा दिनों] में लाकर कथा हो जाने पर सबको सुनाया । तो सब श्रोता मुग्ध हो गये और स्वामीजी की बड़ी प्रशंसा करने लगे[1]।

---

१. सुन्दर ग्रंथावली [प्रथम खण्ड] सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा : सं. १९९३, - जीवन चरित्र विभाग, पृ. ४६ से ४८

इस आख्यायिका के साथ काशी में रह कर अखा के अध्ययन करने के संबंध में प्रचलित आख्यायिका का भी अवलोकन किया जायेगा । प्रस्तुत आख्यायिका लिखित रूप में सर्व प्रथम " डाह्याभाई पंडित " रचित " कवि चरित " में मिलती है । कवि चरित की रचना संवत् १९२५, ई.स. १८६९ है । गुजरात के कवियों का विस्तृत परिचय गद्य में देनेवाला प्रस्तुत ग्रंथ सब से पुराना और प्रथम है । गुजरात के कई विद्वानों का ध्यान इस ग्रंथ की ओर नहीं गया है । प्रस्तुत ग्रंथ दो भागों में विभाजित है । प्रथम भाग में संस्कृत के कवियों का " इतिहास " है और -- द्वितीय में " प्राकृत " कवियों का । प्राकृत कवियों में मराठी, हिन्दी और गुजराती के संत भक्तों को लिया गया है । गुजराती में नरसिंह महेता, मीरांबाई, प्रेमानंद भट एवं शामल भट के पश्चात् " अखा भक्त " का इतिहास दिया गया है । उस में अखा के अध्ययन से संबंधित जो आख्यायिका लिखी गई है वह अविकल रूप से भाषांतरित कर यहाँ प्रस्तुत की जा रही है[१]। अखा सत्पुरूष की शोध करते करते काशी जा पहुँचा । वहाँ घुमते घुमते एक रात्रि किसी संन्यासी के मठ में गया । वहाँ एक संन्यासी के पास ब्रह्मानंद नामक संन्यासी वेदांत की

---

१. " पछी सत्पुरूषनी शोध करतो करतो काशी जइ पोंहोंचो. त्यांहा फरते फरते एक रात्रे संन्यासीना मठमां गयो । त्यांहा एकज संन्यासी आगळ ब्रह्मानंद नामनो संन्यासी वेदांतनी कथा करतो हतो, ते तेणे संडास पछवाडे उभा रहीने सांभळी, ते एने पसंद पडी अने बीजे दिवसे ते संन्यासी पासे जईने धन विगेरेनी लालच देखाडवा मांडी पण ते ललचायो नहि. पछी एणे जाण्युं के आज कोई एक महापुरूष छे तेथी ए रोज रात्रे जईने छानो मानो कथा सांभळतो, एम

कथा करता था । पाखाने के पीछे खड़ा रह कर अखा ने वह कथा सुनी तो उसको पसंद आई । दूसरे दिन उस संन्यासी के पास जा कर वह धन आदि की लालच दिखाने लगा । किंतु संन्यासी लालच में नहीं पड़ा । बाद में उस [अखा] को ज्ञात हुआ कि यही कोई महा पुरूष है । अतः रोजाना रात को जा कर लुक छिप कर [वह] कथा सुनता । ऐसा वर्षोंक तक चला । ऐसे में एक रात्रि वह सुनने वाला संन्यासी निद्रावश होने पर जब " हुंकारी " न दे सका तब अखा ने हुंकारी दी । यह सुन कर ब्रह्मानंद को संशय हुआ । अतः उसने दीया लेकर देखा तो अखा को पाया और पुछा कि तुम कौन हो ? अखा ने कहा महाराज ! मैं आपका दास हूँ और यहाँ रह कर कथा सुनता हूँ । अब मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिए । तब ब्रह्मानंद ने पूछा, तुमने आज की कथा सुनी या पहले से सुनते हो ? उसने कहा, महाराज! ऐसे सुनते सुनते एक वर्ष हुआ । ब्रह्मानंद ने पूछा कि क्या सुना ? तब पहले दिन से जो सुना था उसके अनुसार अखा कहने लगा । ब्रह्मानंद को ज्ञात हुआ कि यह कोई मुक्त जीव है और कथा सुनने का अधिकारी है । अतः ब्रह्मानंद ने कहा कि तुम अब सम्मुख बैठ कर कथा सुनते जाओ । फिर इस प्रकार कथा सुन कर अखा अपने घर पुस्तक लिखने लगा ।"

वर्षोंक दहाडो थयो । स्वामां एक रात्रे सांभळनार संन्यासी निद्रावश थवाथी होंकारो देइ शक्यो नहि, त्यारे अखाए होकारो दीधो, ते सांभळीने ब्रह्मानंदने शक आव्यो, तेथी तेणे दीवो लईने जोयुं तो अखाने दीठो ने पुछ्युं के तमे कोण छो ? त्यारे एणे कह्युं के महाराज हुं तमारो दास छुं, ने अहीयां रहीने कथा सांभळुं छुं, हवे मारा उपर अनुग्रह करो, त्यारे ब्रह्मानंदे कह्युं के,तमे आजज कथा सांभळी के आगळ कंइ सांभळी छे ? एणे कह्युं के, महाराज सांभळतां एक वर्ष थयुं, ब्रह्मानंदे पुछ्युं के शुं सांभळयुं ? अखे पेहेला दिवसथी सांभळया प्रमाणे केहेवा मांड्युं त्यारे ब्रह्मानंदे जाण्युं के आ कोई मुक्त जीव छे अने कथा सांभळवाने

उपर्युक्त आख्यायिकाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित साम्य सूचक तथ्य निकाले जा सकते हैं :

१. अखा और सुन्दरदास दोनों ने काशी में रह कर अध्ययन किया था।

२. यह अध्ययन प्रखर वेदांती के पास किया गया था।

३. यह वेदांती कथा वाचक भी थे।

४. दोनों संत मेधावी पुरूष थे जिससे एक वर्ष पहले सुनी हुई कथा यथावत् पुन: बता सके।

५. दोनों ने यह ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ग्रंथ रचना की।

६. दोनों ज्ञान मार्गी- कवि थे।

७. दोनों का हिन्दी भाषा पर प्रभुत्व था।

८. दोनों ब्रह्म ज्ञान तथा शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने के अधिकारी थे।

९. दोनों में सत्य ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र आतुरता भी थी।

१०. दोनों का व्यक्तित्व अपने विधागुरू को प्रभावित कर सके ऐसा शक्तिशाली था।

११. दोनों ब्राह्मणेतर जाति के थे।

१२. यह कथा प्रयोग पूरे वर्ष तक चला।

१३. कथा सुनते समय दोनों संत अन्य श्रोता जनों से गुप्त दूर रहते थे।

१४. गुरू-शिष्य की विचार धारा में साम्य था।

अधिकारी छे, तेथी एने कहुं के तमे छवे सन्मुख बेशी कथा सांभळता जाओ. पछी एणे एवी रीति कथा सांभळी घेर पुस्तको लखवा मांड्या।
— कवि चरित, प्राकृत कवि विभाग, पृ. ७२-७३.

१५. सामान्य श्रोता जन दोनों संतों पर जलते थे ।

इन समानताओं के अतिरिक्त अखा की रचनाओं और सुंदरदास के "ज्ञान समुद्र" तथा अन्य रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन[१] से भी निम्नलिखित समानतायें उपलब्ध होती हैं ।

सुन्दरदास: जैसे स्वान काच के सदन मध्य देखि और
मूंकि मूंकि मरत, करत अभिमान जू ।
अपनो ही भ्रम सो तो दूसरो दिखाई देत
आपकूं विचार कोऊ, देखिये न आन जू ।। भ्रमांग साखी

अखो : ज्युं काच मंदिरमें कूकरो, भसी मर्यो सिर फाड
भिन्न भिन्न देख्या श्वान सब प्रतिबिंब बिना विचार।
सो ही मंदिरमें नर बस्या, ठोर ठोर देख्या आप
अखा निरमल जे नर ताकु आत्यम व्याप ।।
-- कुमति अंग साखी

सुन्दरदास : सुन्दर महल संवारिके राख्यो कांच लगाई
दैवयोगे सुनहा गयो एकु अनेक दिखाई ।

अखो : मोटा मंदिर बुहार चार दिश काचो ढाळ्या
नील पीत बहु रंग, ढंगना भेदो माळ्या
उठयो शशीको सूर, दूर थी अतिशे झलके
देखाडे बहु रूप धूप विविध पर चळके
अखा उपर अवलोकतां, तहां तेमनुं तेम छे
तेम त्रिलोकी जाणजे, एक वस्तु वडे एम छे ।
- अनुभव बिंदु-२७

१. दोनों की भाषा व्रज मिश्रित खड़ी बोली है।

२. दोनों की शैली अक्खड़ तथा कटु समीक्षात्मक है।

३. दोनों की साखियाँ अंगों में विभाजित है।

सुन्दरदास: पलही में मरि जाय, पलही में जीवतु है
पलही में पर हाथ देखत बिकातो है
पलही में फिरै नव खंड ब्रह्मांड सब
देख्यो अनदेख्यो सो तों या तै नहि छानो है
जातो नहिं जानियत, आवतो न दीसि कछु
ऐसेसी बलाई अब, तासूं परयो पानो हैं।

अखो : केने कहुं हुं मर्ते, तर्ते जो जीवत देखूं १
केने कहुं हुं स्थूल, मूल जे सूक्ष्म पेखूं
वेंता विण विज्ञान विना, कोण अखा केने कहे
ज्यां नहि शब्द उच्चार विधि, चिदाकाश चिद् लहे।
– अनुभव बिंदु -१८

सुन्दरदास: जैसे पानी जमिके, पषाण हू सों देखियत
सो पषाण फेरि पानी होय के बहुत है
तैसे ही सुन्दर यह जगत है ब्रह्ममय
ब्रह्म सो जगतमय, वेदसु कहत है।

अखो: और नहि कोई कला हरि तें ज्यों पानीको पाला भयो
जोई निगुर्ण सोई सुकृत है, नाम रूप आपे नमो।
– ब्रह्मलीला छंद-३

४. दोनों ने कवित्त, सवैया आदि छंद प्रयुक्त किये हैं।

५. दोनों की वाक्य रचना तक में साम्य है।

६. दोनों द्वारा दिये गये द्रष्टांतों, रूपकों आदि में भी साम्य है।

सुन्दरदास: आपुन काज संवारन के हित, और कु काज बिगारत जाई
आपुन कारज होउ न होउ, बुरो करि औरकुं डारत भाई
आपहु खोवत औरहु खोवत, खोइ दुनों घर देत बहाई
सुन्दर देखत ही बात आवत, दुष्ट करै नहि कौन बुराई है।

अखो : संत की निंदा करत जन मुंडु सो आनत है अपने घर कुता
जूं बैरीकु सोण बुरा करनेकु नासिका निज काटे सो बिगुता
परोसी को मंदिर जरावते मुरख आपनो फूंप शोल गाय के सुता
कहेत अखो कबुधी नर जेता, और अकाजनुं आप मे मूता

सुन्दरदास : जब मन देखे जगत कौं, जगत रूप है जाई
सुन्दर देखे ब्रह्मको तन मन ब्रह्म अखाई

अखो: जो मन मान्यो तो ब्रह्म सबको जो मन मान्यो तो जीव सबे।
— सं. प्रि. ४४

सुन्दरदास: सुन्दर जौ मन ब्रह्म विचारत तो मन होत ब्रह्म स्वरूपा।। ३

अखो: मनको लदा पलटतें पुरन ब्रह्म जैसो की तैसो है सदा ।।
— संतप्रिया. ४५

इन तथ्यों के आधार पर यह निश्चित् रूप से कहा जा सकता है कि अखा और सुन्दरदासजी की भेंट अवश्य ही हुई होगी । और चूँकि सुन्दरदासजी सं. १६८२ वि. तक ही बनारस में ठहरे थे, प्रस्तुत भेंट सं. १६८२ वि. में इन के बनारस से चले जाने के पूर्व ही हो सकती है ।

सुन्दरदास: जो उपजै बिनसै गुन धारत सो यह जानहु अंजन माया

आवै न जाइ मरै नहीं जीवत, अच्युत एक निरंजन राया ।।

अखो: अविनाशी वणसे नहीं, वणसे सो ही माया ।

-- भजन -१५

सुन्दरदास: अपणा सारा कछु नहीं, डोरी हरिके हाथ

सुन्दर डोले बंदरा, बाजीगरके साथ ।

-- सुन्दर विलास, २८

अखो: मायाए मर्कट कर्या

वासना दोरी कंठमां, काल नाटय साथे फर्या ।

- अनुभव बिंदु -२३

सुन्दरदास: कुक्सके कूटे कहूं निकसत कन है ?

अखो: कथणी कुक्स कुटते, शेष न पामे सार

-- लक्ष हीणा अंग, साखी -१५

इ. अखा की केवल दो कृतियों के रचना काल मिलते हैं: १. गुरू-शिष्य संवाद का रचना काल सं. १७०१ वि. है[1] और २. अखे गीता का सं. १७०५ वि.[2]। विषय निरूपण, अभिव्यक्ति कौशल एवं भाषाधिकार की दृष्टि से अखे गीता का परिशीलन करने पर प्रतीत होता है कि प्रस्तुत कृति कविकी परिणत प्रज्ञावस्था का सर्जन है। अखा को ऐसी पक्वता प्राप्त करने में करीबन् २० वर्ष का समय लगा होगा। अत: सं. १७०५ में से २० वर्ष कम किये जाय तो अखा के कवनकाल की सीमा सुन्दरदासजी के सम्पर्क के पश्चात् सं. १६८५ वि. के आसपास प्रारंभ हुई मानी जा सकती है।

ई. गुजरात के कई विद्वानों[3] ने निम्नोधृत छप्पा[4] के आधार पर यह स्वीकार किया है कि कवि की बानी उनकी बावन-तीरपन वर्ष की उम्र के पश्चात् ही खुली। ऐसी ही एक और पंक्ति[5] कवि की हिन्दी कृति से भी दी जा सकती है। अत: सं. १६८५ वि. में से ५३ वर्ष कम करने पर अखा का जन्म समय सं. १६३२ वि. के आसपास आता है।

---

१. संवत १७०१ सत्तर प्रथम हवो ग्रंथ उत्पन्न
   जेष्ठ मासे कृष्ण पक्षे नवमि सोमवारसरदीन्न।
   — फा.गु.सा.स.ह.लि.पोथी ३३६

२. संवत सत्तर पंचलोत्तरो, शुक्ल पक्ष चैत्र मास
   सोमवार रामनवमी, पूरण ग्रंथ प्रकाश ।।
   — अखे गीता कडवक ४० छंद १०

३. दृष्टव्य: साहित्यकार अखो-
   अ. अखो भक्त: के.का.शास्त्री : पृ. ६
   आ. अखानो परिचय: स्वामी स्वयंज्योति : पृ. २१
   इ. अखो भक्त अने तेमनी कविता : अंबालाल जानी पृ. ४१

४. अ. बावनपे ~~बुद्ध~~ बुध्य आधी वटी, मण्या गण्याथी रही ऊगटी।।३४३।। छप्पा
   आ. तिलक करतां त्रेपन थयां, जप मालानां नाकां गयां।।६२८।। छप्पा

५. तीन पचास जीऊं जो मे कोउ, तोहुं न चेत्यो रंच हिये तें ।।१३२।।
   — संतप्रिया

इस प्रकार अखा के कवनकाल की सीमा उनके जन्म के ५२-५३ वर्ष के पश्चात् मानी जा सकती है। अर्थात् अखा अपने जीवन के ५२-५३ वर्ष तक सच्चे गुरू की शोध में इधर उधर घूमते रहे और इतने समय के पश्चात् ही उनकी बानी खुली। जैसे कि पहले ही स्वीकार किया गया है ' अखे-गीता ' की रचना में कवि की जो परिणत प्रज्ञा के दर्शन होते हैं उस प्रज्ञा को सिद्ध करने में कवि को कम से कम २० वर्ष अवश्य लगे होंगे। अत: अखेगीता ' के रचना समय सं. १७०५ में से २० वर्ष कम करने पर सं. १६८५ आयेगा। इस सं. १६८५ में से ५३ वर्ष और निकाल देने पर सं. १६३२ वि. रहता है। इसे हम कवि के जन्म संवत के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

अखा के जन्म के प्रस्तुत सं. १६३२ का समर्थन अन्य स्रोतों से भी किया जा सकता है। उन स्रोतों में से एक है: अखा के वंशजों का ' पीढ़ी नामा '[१] और दूसरा है अखा के शिष्यों की परंपरा सूचित करने वाला ' अक्षय वृक्ष '।[२] दो पीढ़ियों के बीच ५० से ५५ वर्ष के अंतर का होना स्वीकार कर इन दोनों स्रोतों का परीक्षण किया जा सकता है।

अखा के ' वंश वृक्ष ' के अनुसार अखा से लेकर बाबुभाई के पुत्र तक की सात पीढ़ियाँ होती है। इस वंश वृक्ष के अनुसार दो पीढ़ियों के मध्य ५५ वर्ष का अंतर स्वीकार करने पर सात पीढ़ियों के ३८५ वर्ष सं. २०२३ में से कम कर देने से सं. १६३८ रहता है। यह संवत अखा के जन्म संबंधी उपर्युक्त संवत के बिलकुल निकट पड़ता है।

---

१. विशेष विवरण के लिए देखिए प्रस्तुत प्रबंध का पृ. ४३-४६

२. विशेष विवरण के लिए देखिए प्रस्तुत प्रबंध का पृ. ३९-४१

अक्षयवृक्ष की प्रतिच्छाया

गुरु गुरुदेव की जय, जय जय

परमात्मा परब्रह्म जे, जे मनवाणी अगम्य
तेनो लक्ष आपी शके जे माटे गुरु जे ब्रह्म।

ध्यान सूकर विडालस्वर तेना येकानो अंत
तेने मुके हरि करी, जेने मळे सदगुरु संत॥
श्री० अ० गी०

गुरुदेव की जय
गुरु गुरु गुरु देव की जय।

आशा कीसकी नव करे शब्दे रहेवे स्थिर
मुनि जीता तब जानचे साचा सोही फकीर

ॐ

ભગવાનજી મહારાજ

સ્વરૂપાનંદજી

દયાનાનંદ સ્વામી

પૂર્ણાનંદ સ્વામી

મુક્તાનંદજી — વિશ્વાનંદ

કલ્યાણ દાસજી

ચિદાનંદ — ઉદેરામ

બ્રહ્માનંદ

સમજુબા

જીવામુનિ નારાયણ

સેવારામ

ગાંડારામ

નારાયણાનંદ

રતનબા — ગૌરીબા

હરિકૃષ્ણ મહારાજ

કેવળપુરી

જીવનદાસજી

લાલ દાસજી

વિદ્યાધર

રઘાજી

ગોપાળ

બુરાજી — નરહરદાસ

પ્રજ્ઞાનંદસ્વામી (કાશીપુરીમાં)

अच्युत गोत्र जनराम का हंस बरन हरिरूप
गुरु गोविंद कु जब मिल्या तब ही भया तद्रूप
।१।
- अखाजी

स्वामी सर्वापास सभर भर्यो स्थळे मळे
पण दोहयलो मळवो दास मळ भेदु भगवंतनो
।१।

अखाजी

मनशुं वात विचारी अखे साची जेमे मायाभवे
।२।
जो तुं जीव तो कर्ता हरि जो तु शिव तो वस्तु स्वरी ।३।

જગજીવન સ્વામી

ॐ

इच्छा उठी जो शमे तो आत्मा नथी अळगो
मुनि नारायण एम कहे ए कोने नथी वळगो
।१।

जीवामुनि

अखा की गुरु-शिष्य परंपरा का जो " अक्षय वृक्ष " लेखक को कहानवा आश्रम से प्राप्त हुआ है उसके अनुसार अखा से ले कर भगवानजी महाराज तक की आठ पीढ़ियाँ होती है, सात नहीं - जैसा कि आचार्य उमाशंकर जोशी ने बताया है[1]। इस " अक्षय वृक्ष " के अनुसार दो पीढ़ी के बीच पचास वर्ष का अंतर स्वीकार करने पर आठ पीढ़ियों के ४०० वर्ष भगवानजी महाराज के निधन संवत २०१६ में से कम करने पर सं. १६१६ वि. रहता है। यह संवत भी अखा के जन्म संबंधी संवत से विशेष दूर नहीं पड़ता।

निधन संवत

औरंगज़ेब के अपने पिता शाहजहाँ को कैद [८ जून १६५८[2]] और अपने भाई " दारा " तथा " मुराद " की क्रमश: ३० अगस्त १६५६[3] और ४ दिसंबर १६६१[4] में हत्या कर राज्य को हथिया लेनेवाले कार्य के जो उल्लेख[5] कवि की रचनाओं से उपलब्ध होते हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अखा ४ दिसम्बर १६६१ [सं. १७१७ वि.] तक निश्चित् रूप से जीवित थे। अत: अखा का दिवंगत होना सं. १७१७ वि. के पश्चात् सं. १७२५ वि. के आसपास माना जा सकता है।

समग्र चर्चा के निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अखा का

१. जन्म सं. १६३२ वि.

२. कवन काल सं. १६८५ वि. से सं. १७०५ वि. तक और

३. मृत्यु संवत १७२५ वि. के आसपास स्वीकार किया जा सकता है।

---

१. अखाना छप्पा: सन् १६६३ पृ. १

२. औरंगज़ेब : यदुनाथ सरकार : सन १६५१ पृ. ६४३

३. वही पृ. ६४४

४. वही पृ. ६४

५. राज पुत्रनो न्याय, उपाय तहां तेह करवो
   ज्येष्ठ कनिष्ठ भ्रात तात लगे वाछे मरवो।
   - अनुभव बिंदु -२१

नाम

अखा के वंशजों के पास से उपलब्ध " पीढ़ीनामा " में अखा का वास्तविक नाम " अखेराम[1] " बतलाया गया है। एक दो स्थान पर " अखेराम[2] " का प्रयोग कर कवि ने स्वयं के लिए प्राय: सर्वत्र " अखा[3] " और " अखो[4] " ही अधिक रूपसे प्रयुक्त किया है। अखा का नाम गुजरात और गुजराती साहित्य के इतिहास में इतना प्रसिद्ध हो चुका है कि इसके संबंध में संदेह के लिए कोई स्थान ही नहीं है। गुजरात के मध्यकालीन ज्ञानप्रधान विचार-धारा के संतों में अखा का नाम अग्रणी है।

कहीं कहीं कवि ने काव्योपयुक्त रीति से अपने नाम का श्लिष्ट प्रयोग भी किया है[5]।

---

१. " रामदेव पीर " पंथ सौराष्ट्र के संत भूतनाथ के एक शिष्य का नाम " अखेराम " है। इस अखेराम ने अपने लिए कहीं कहीं अखा, अखैया, अखैरदास आदि अन्य रूपों के भी प्रयोग किये हैं। प्राचीन संत भक्त कवियों की बानी के कुछ संपादकों ने आलोच्य कवि और भूतनाथ के शिष्य अखेराम को एक समझ कर दोनों की बानी को मिश्र कर दिया है। दृष्टव्य :

अ. अध्यात्म भजनमाला : भा. २ संपा. कहानजी धर्मसिंह, पृ. ५

आ बृहद् भजन सागर, संपा.: पंडित कान्तीतिक सं. १९६५, पृ. ३

२. अ. अखेराम " ओलखियो तेह पर अंतर नावे जेह।

आ. त्रिगुणकी निद्रा घेर न लागी " अखेराम " अंतर मति जागी। पद १५

३. कहे " अखो " वही अकथ कहानी, नहि कछु पायो में नाहि गमायो।

४. कहता " अखा " जानेगा हार्या, हार्यै को आवे इतबारा। पद १७

५. " आखे आखो " हम किया विचारा, नगर अविनाशी किया अधवारा।
- भजन-६, अक्षय रस।

जाति और व्यवसाय

कबीर ने " जाति जुलाहा नाम कबीरा " कह कर अपने नाम और जाति के बारे में कोई संदेह रहने नहीं दिया है परंतु अखा ने अपनी जाति के बारे में कोई स्पष्टोक्ति नहीं कही है। अपनी हिन्दी गुजराती रचनाओं में अनेक स्थानों पर अपने नाम के साथ तथा नाम के बिना भी सोनारो[१], सोनार[२], आदि शब्दों के जो प्रयोग कवि ने किये हैं उनसे उनकी जाति की सूचना मिलती है।

कहीं कहीं " सोनारा " शब्द का काव्यात्मक[३] प्रयोग भी हुआ है।

" कवि चरित[४] " में अखा को " श्रीमाली सोनी " बताया गया है। अखा के वंशजः जो आज कल अहमदाबाद में रहते हैं वे भी अपने को " श्रीमाली " ही बताते हैं। जब कि श्री के.का.शास्त्री[५] और आचार्य उमाशंकर जोशी[६] ने उन्हें परजिआ " सोनी " कहा है। प्राचीन संत-भक्त-कविओं में विशेष कर गुजरात के संत-कवियों के परिचय के संबंध में उपलब्ध लिखित सामग्री में उपर्युक्त " कवि चरित " पुराना एवं विश्वसनीय होने के कारण अखा को श्रीमाली सोनी मानना अधिक समीचीन लगता है। जन विश्वास[७] भी अखा को श्रीमाली सोनी ही बताता है।

---

१. ज्युं का त्युं एक राम सतंतर कहत अखा सोनारा।
-भजन ३०

२. अब कहे सोनारा जातो येही जिस्को तो शास्त्रेंथी बातां। - जकडी ३७

३. मुझको आगे करी करी ढोला, मीठा कडवा बोले बोला
पहिन्या पियु सोनारा चोला। -जकडी २१

४. " कवि चरित " : पंडित डाह्याभाई, पाकृत कवि विभाग, पृ.७२

५. " कवि चरित " : के.का.शास्त्री, भाग एक और दो, पृ.५६३

६. अखो- एक अध्ययन पृ.११

७. जूनुं नर्मे गद्य : पृ.४५७

अखा के सोनार होने के साथ साथ उनके सोने के व्यवसाय करने की भी सूचनायें एतद् विषयक वर्णन के उल्लेखों[१] से प्राप्त होती है।

पूर्वज और माता पिता

खुद कवि ने तो अपने माता पिता का कहीं प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से स्मरण नहीं किया है किंतु नर्मदाशंकर महेता ने अखा का जो " पीढ़ी नामा "[२] दिया है उसके अनुसार अखा के पिता का नाम रोहिदास- रहियादास है। अखा के भाई गंगाराम के वर्तमान वंशजों में " योगाश्रम " [नया वाडज, अहमदाबाद] के संस्थापक पू. चंदुभाई ने लेखक को जो " पीढ़ी नामा " लिखाया है उसमें भी अखा के पिता का नाम रहियादास ही मिलता है।

---

१. अ. जे चौदामां बीजु भळे, मुळ रूप तेनुं ज्यम टळे। छप्पा २०

आ. पडतु सुवर्ण ने बीजु मन, तेने धोवुं धावुं ते नोंहे जतन।

इ. जो मर्म सार अग्निने मळे, थाये चौदु मन पाछु वळे। छप्पा ३०६

ई. सोवणागिर सोनीने भोग, बीजा लोकने न मळे जोग

ते शला माणिने मूकी जाय, अनुभवि होय ते करे उपाय। छप्पा ४७८

उ. दीआ मलामा हेमको, कंचन किआ खराब

ऊ. सो खाकर कर खोया अखा त्युं ही गमाया आप।

ऊ. अणाभिंगीको लहे अखा, जे अणालिंगि होय

ज्युं हीरे हीरो वेधीए, ताहे धातुन वेधे कोय।।

ए. होनारा सो हो रहा, जो इच्छा था हरिराय

ज्युं नासाकर्ण वेधे अखा, अन्य अंग विंध्या नव जाय।।

२. अखा कृत काव्यो, भाग १.पृ.३

लेखक को प्राप्त " पीढ़ी नामा " की विशेषता यह है कि इसमें अखा के प्रपितामह तक के नाम दिये गये है :

कल्याण सोनी
|
अनु सोनी
|
रछियादास
|
गंगाराम | अखा | घमासी

अखा की माता का नाम न तो उनके वर्तमान वंशजों को मालूम है और न तो उसका कहीं उल्लेख ही मिलता है।

भ्राता और भगिनी

अखा के वंशज यह भी बताते हैं कि दो भ्राताओं के अतिरिक्त अखा को एक छोटी बहन भी थीं जिस पर उन्हें बहुत स्नेह था। किंतु अपने पिता की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् वह भी चल बसीं।

तीन भाइओं में से घमासी और अखा का वंश नहीं चला। गंगाराम की परंपरा का एक अंश इस प्रकार है :

रोहीदास

- गंगाराम
  - भूषण → व्रजलाल → घेलाभाई → दलपत → मंगलदास → लालजी
  - अनोपचंद → मंगल सोनी → घोळीदास
    - अमुलख → बाबूभाई → उनके पुत्र
    - लल्लुभाई
- धमासी
- अखा

नर्मदाशंकर महेता ने जो " पीढ़ी नामा " दिया है वह " वहीवंचा के चोपडे " के अनुसार है और श्री लल्लुभाई धोलीभाई को मुखानुमुख जितना याद था उतना ही है। अत: यह कितना विश्वसनीय हो सकता है यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। क्योंकि लेखक को जो उल्लिखित " पीढ़ी नामा " मिला है उसमें भूषण और अनोपचंद दोनों को गंगाराम के पुत्र बताया गया है और इन दोनों की परंपरायें भी अलग अलग है। जबकि नर्मदाशंकर महेता द्वारा निर्देशित " पीढ़ीनामा " में अनोपचंद को गंगाराम का द्वितीय पुत्र न स्वीकार कर उसे भूषण का पुत्र बताया है। और फिर उसके मगनलाल, मगनलाल के घोळीदास और घोळीदास के लल्लुभाई। यथा : रोहीदास → भूषण → अनोपचंद → मगनलाल → घोळीदास →

→ लल्लुभाई । लेखक को प्राप्त " पीढ़ीनामा " के अनुसार गंगाराम के भूषण→ → व्रजलाल → घेलाभाई→ दलपत → मंगलदास → लालजी है । अनोपचंद के मंगल सोनी – घोळीदास – अमुलख – बाबुभाई तथा उनके पुत्रों का उल्लेख मिलता है । घोळीदास के द्वितीय पुत्र लल्लुभाई का नाम अवश्य है किंतु उनकी कोई संतान न होने से उनकी परंपरा वहीं समाप्त हो जाती है । गंगाराम से लेकर लल्लुभाई तक सात पीढ़ियाँ होती हैं । उसी प्रकार गंगाराम से लेकर बाबुभाई के पुत्र तक भी सात पीढ़ियाँ होती हैं । इस वंशवृक्ष के अनुसार पीढ़ी के मध्य पचपन [५५] वर्ष का अंतर स्वीकार कर अखा के जन्म संवत की चर्चावाले परिच्छेद में प्रस्तुत " पेढ़ीनामा " की ~~सत्य~~ प्रामाणिकता सिद्ध की गई है ।

पारिवारिक जीवन

कबीर वैरागी होते हुए भी गृहस्थ थे और नरसिंह महेता गृहस्थ होते हुए भी वैरागी थे । किंतु अखा न तो संपूर्ण गृहस्थ थे और न तो आकस्मिक बैरागी । अखा का एक छोटा-सा परिवार था जिसमें आठ व्यक्ति थे । माता-पिता, भार्या – भगिनी, दो भाई और स्वयं ।

अखा विवाहीत थे । जनश्रुति और गंगाराम के वंशजों का कहना है कि अखा ने दो विवाह किये थे । प्रथम पत्नी झगड़ालू थी, कवि की उसके साथ अच्छी नहीं पटती थी । अत: उसके चल बसने पर अखा ने दूसरा विवाह किया । द्वितीय पत्नी का स्वभाव अच्छा था । " दोनों नि:संतान ही दिवंगत हुई "[१] ।

---

१. जूनु नर्मं गद्य : पृ.४५६

किंतु फुट नोट में प्रस्तुत आत्मलक्षी पद के आधार पर यह सूचित होता प्रतीत होता है कि अखा का कुटुंब भरा-पूरा था । अपने को आध्यात्मिक पथ से भ्रमित करनेवाले परिवार के व्यवहार के परिणाम स्वरूप, अखा किसी ज्ञानी गुरू से संसार के विघ्नों का रहस्य समझ कर इन सबसे विरक्त हो गये ।

गृहत्याग

इस प्रकार पिता, भगिनी आदि के एक साथ थोड़े थोड़े समय के अंतर पर चल बसने के कारण, विफल दाम्पत्य के कारण तथा धर्म-भगिनी जमना के अविश्वास, टकसाल में साथियों के दुर्व्यवहार आदि दुर्घटनाओं के परिणाम स्वरूप अखा के अंतस में निर्वेद के भाव उमड़ पड़े और वे, जैसा कि अन्यत्र स्थापित किया गया है सं.१६७८ के आस पास गृह त्याग करके सच्चे गुरू की शोध में निकल पड़े । निम्नलिखित पंक्तियों में उनके गृहत्याग की व्यंजना स्पष्ट है :

१. घर न चले घरवासा भागा, अनमे खोज लीनी निज जागा ।। टेक ।।
मेरे लडका कोई न मेरा, मों से सब करे घर घेरा । १ ।
पांचे पूत ठगारे घरमें, मेरि माया लगावे भरमें । २ ।
गुरू ज्ञानि मोहे मरम बताया, तब में सबका हिरदा पाया । ३ ।
गुरूके हिरदेका बिचारा, सारा कुटुम्ब त्रिगुनि बिस्तार । ४ ।
ऐसा जान सब थाप थपेडया, द्वैत लखा भागा घट घेरा । ५ ।
असल एन असमानी आपा, जाका मोल तोल नहि मापा । ६ ।
नाहीं भीतर नाहीं बहारा, ज्युं का त्युं ही अखा दे सारा । ७ ।

— अखानी वाणी, पद-१०६ : पृ.२०२

कला कुंची सदगुरू तणी, जेने लागी होय लगार
कमाड खोली खड़की तणुं र तो ठेकीने निसर्यो बहार ।
बहार निसर्यो त्यारे बुध्धि आवी, ने काप्या कर्मना पास
कहे अखो तेने पांखो आवी, ते उड़ी चाल्यो आकाश[1]।

पर्यटन और यात्रा मार्ग :

यद्यपि अखा न तो घुमक्कड़ थे और न तो तीर्थाटन में उनकी रूचि थी[2]। तथापि जनश्रुति और " पछी गुरू करवाने गोकुल गयो," " तिरथ फरी फरी थाक्या चर्ण " आदि उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि अखा ने देशाटन अवश्य किया था । अत: गृहत्याग कर सच्ची शांति की खोज में निकले हुए अखा की यात्रा का मार्ग " अखा से संबंधित स्थानवाले विभाग में विवेचित स्थानों की चर्चा के आधार पर इस प्रकार अनुमित किया जा सकता है :
अहमदाबाद → गोकुल → बनारस → पंजाब → मारवाड़ → अहमदाबाद पंजाब से वापस लौटते समय मारवाड़ की ओर होते हुए संत अखा ने अहमदाबाद को प्रत्यावर्तन किया ।

---

१. अखानी वाणी, पृ. १२६, पद १५

२. अ. फिरत ही फिरत फना जिनु खोजा परदेश ।
– समस्यांग –८

आ. प्रत्यक्ष के परमान बिना नर धावत धूपत तोरत पातो ।
– सं. प्रि. ७

गुरू

" आत्म की वाणी " खुल जाने के पश्चात् की रचनाओं में अखा ने प्राय: अपनी आत्मा को ही अपना गुरू बताया है। उनका कहना है कि हमारी आत्मा ही हमारा सच्चा गुरू है और इस आत्म रूप गुरू को जान लेने पर व्यक्ति को अवश्यमेव ब्रह्मज्ञान या ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है[१]।

अन्यत्र अखा ने गुरू और परब्रह्म में अभेद स्थापित कर अपने गुरू को सर्वत्र भरा हुआ, अनंत नामवाला और अनंत आंखोंवाला भी बताया है[२]। गुरू और ब्रह्म में अभेद होने के कारण ही अखा के गुरू किसी अन्य चौलाधारी गुरू की भाँति न तो कहीं जन्मे हैं और न तो जन्म ने वालें हैं। अखा के गुरू तो अजरायल है और सारे सारे स्थावर जंगम उनकी सेवा करते है[३]। अपने में और अपने ऐसे गुरू में अद्वैत संबंध बताते हुए अखा कहते हैं कि गुरू ने मुझे अपना नाम दिया है और इस प्रकार हम दोनों का द्वैत्व मिट गया है। नख से शिख तक मुझ में मेरे गुरू भरे हैं तो मैं कैसे उनकी माला जपूँ या सेवा करूँ? गुरू नाम की माला मेरे खुद के नाम की माला जपने के बराबर है[४]।

---

१. अ. जे नरने आत्मा गुरू थशे, कहुं अखानुं ते प्रीछशे।
— प्रपंच अंग -१७०
आ. " गुरू था तारो तुंज नथी कोई बीजुं भजवा
— अनुभव बिंदु ३१

२. गुरू मेरा भरा भर्या सब नामुं देवे बोला।
सब नेनु देखे अखा बेकिमत्य अमोल ।। ३ ।।

३. नां होना नां होयगा, अजरायल गुरूदेव।
स्थावर जंगम सब अखा करे गुरू की सेवा ।। ४ ।।

४. अपना नाम गुरू मुज दिया तब न रहे हम दोन
नख-शिख व्यापक गुरू अखा तो माला जपे सो कौन ।। ५ ।।
-गुरू अंग साखी।

इस प्रकार साक्षात् परब्रह्म स्वरूप होने[१] के कारण देश, काल, नाम, रूप आदि के बंधनों से सर्वथा परे ऐसे इस संत ने अपने को इस परम दशा पर पहुँचाने वाली अपनी साधनावस्था के आध्यात्मिक गुरू ब्रह्मानंद के जो सहज उल्लेख किये हैं उसमें गुजरात के विद्वानों में अखा के गुरू विषयक काफी मतभेद रहा है। जो विद्वान इस पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो कर ही चलते हैं कि अखा ने सिवा अपनी आत्मा के अन्य किसी को अपना गुरू नहीं ही किया है, वे लोग जनश्रुति एवं श्रद्धेय संत भक्तों की प्रामाणिक सूचनाओं की क्या कहें, स्वयं अखा द्वारा अपने गुरू के उल्लेखवाली पंक्तिओं में से " ब्रह्मानंद " शब्द को व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में स्वीकार न कर उसे सामासिक पद बताकर उसमें से " ब्रह्म का आनंद " अर्थ निकाल कर प्रश्न को अनावश्यक रूप से उलझाते हैं।

गु॰व॰ सो॰ के ग्रंथ भंडार की ह॰लि॰पोथी संख्या ७५३ में रचित जो एक " हरि गुरू संतनी " आरती है उसमें यह स्पष्ट है :

ओम ब्रह्मानंद स्वामी अनुभव्या रे।

मुने भास्युं छे ब्रह्माकार ।।

अखानी वाणी [द्वितीय आवृति, वि॰सं॰१९८१] पृष्ठ २९६ पर छपे पद संख्या १३६ में इस " अनुभव्या रे " का " अनुभव्यो रे " हो गया है। शुद्धि पत्र में इसका कोई सुधार नहीं है। के॰का॰शास्त्री, उमाशंकर जोशी, नर्मदाशंकर महेता, अंबालाल जानी आदि अखा के बड़े बड़े अध्येताओं ने

---

१. मरण जीवण सो देहका धरमा, मैं तो नाहीं इन्द्री अरू चर्मा
नाम धरनकु अखा सोनारा, सदा निरंतर राम है सारा। पद १६, अक्षय रस।

HANSA MEHTA LIBRARY 51

" इसी " अनुभव्यो रे " को अपने निष्कर्षों के आधार रूप में ग्रहण किया है।

मज़ेदार बात यह है कि इस अशुद्धि को आज तक न तो अन्य किसी विद्वान ने सुधारा है न तो प्रस्तुत वाणी के संपादकों ने इसे दूर किया है। अर्थात् " अखानी वाणी " की द्वितीय आवृत्ति वि॰सं॰१९८१, से लेकर वर्तमान छठी आवृत्ति वि॰सं॰२०२०, तक यह अशुद्धि बेरोकटोक चली आई है।

उस परिवर्तित पंक्ति में से भी ब्रह्मानंद स्वामी के स्पष्ट होनेवाले नाम निर्देशों को छोड़कर श्री के॰का॰शास्त्री " स्वामी " शब्द से ब्रह्म का अर्थ लेते हैं। इसके प्रत्युत्तर में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पंक्ति में " ब्रह्मानंद स्वामी " है, ब्रह्म स्वामी नहीं। वे इसी पंक्ति पर व्याकरण की दृष्टि से विचार करते हुए बताते हैं कि "अनुभव्यो" के स्थान पर " अनुभवाव्यो " होता तभी " ब्रह्मानंद स्वामी " का गुरुवाची अर्थ लिया जा सकता था। मेरे ख्याल से आज से सैंकड़ों वर्ष पूर्व प्रतिलिपित मध्यकालीन संतों की वाणी में व्याकरण की छोटी छोटी बातों की भी संगति ढूँढ़ना उन संत भक्त कवियों के प्रति अन्याय है। तिस पर अखा ने तो मात्रा शुद्धि का पालन क्या, विचार तक नहीं किया है। और अपने समय के ऐसे ही भाषा के आग्रहवादियों को भू - मुर्ख कहा है[१]।

उपर्युक्त पंक्ति के तुरंत बाद की " महानुभावे मेहेर करी समजावी सर्वे रीत " पंक्ति से " महानुभाव ब्रह्मानंद स्वामी " का सूचन और स्पष्ट हो जाता है।

किसी किसी ह॰लि॰पोथी में " ब्रह्मानंदनी " और " ब्रह्मनंदनी " देख कर इसका ब्रह्मानंदिनी [ब्रह्मा की पुत्री] सरस्वती का अर्थ ग्रहण करना अपने पूर्वग्रह को ही बल देने के बराबर है। ता.डभोई के करणेट गाँव से

---

१. भाषाने शुं वळगे भूर।

उपलब्ध एक ह०लि०पोथी में अखा का एक गुजराती पद है जिसमें अखा के स्थान पर " अख, " " काम के स्थान पर " कम " तथा राम के स्थान पर " रम " आदि मिलते हैं[१]। कहने का मतलब यह है कि " ब्रह्मानंदनी " के स्थान पर दो तीन बार " ब्रह्मनंदनी "[२] मिल गया तो उससे कवि को अभिप्रेत अर्थ की परंपरा को छोड़कर असंगत अर्थ निकालना उचित प्रतीत होता नहीं है।

हम इस प्रश्न पर अन्य अनेक अंत:साक्ष्यों और बहि:साक्ष्यों के आधार पर समीक्षात्मक ढंग से विचार करेंगे।

अखा की ही रचनाओं से उपलब्ध अखा के गुरू रूप में ब्रह्मानंद का नामोल्लेखवाली पंक्तियों को हम दो भागों में विभाजित करेंगे :

अ. ब्रह्मानंद का स्पष्ट उल्लेख करनेवाली पंक्तियाँ और

आ. ब्रह्मानंद का श्लेषात्मक रूप से उल्लेखवाली पंक्तियाँ।

अ. :१: संतो ज्ञान हिमाळे जे गले ते नर आवे न जाय,
अखा, गुरू ब्रह्मानंद भेटतां ज्योतमां ज्योत समाय[३]।

:२: ब्रह्माकार विचारतां रे सर्वे द्वैत भावना जाय,
सो) हम ब्रह्मानंद अनुभव्या रे वस्तु यथारथ थाय[४]।

:३: रहीए इश्वरने आशरे, समरी लईए सांइयां।
ब्रह्मानंद चरणे, अखो भणे, अखे रामज कह्यिा[५]।

:४: सदगुरूजीए सानमां समजाव्युं सुख अपार
ब्रह्मानंद स्वामी अनुभव्यो रे, जग भास्यो छे ब्रह्माकार[६]।

---

१. देखिए : प्रस्तुत प्रबंध का परिशिष्ट
२. देखिए : संस्कृति : संपा०उमाशंकर जोशी, वर्ष १-६ अंक : ६ सितम्बर
३. अप्रसिद्ध अक्षयवाणी पृ० २२
४. अखानी वाणी, पृ० २३१, पद-१४२
५. अखानी वाणी : पृ०१८ पद ६५
६. वही. पृ.२२ पद १३०

आ. :१: अखे घणुं अवलोकिउं । शुध्ध चैतन्य निरालंब रूप ।
वस्तु यथारथ पामीए । विलसी रह्यो ब्रह्मानंद भूप[१]।

:२: सदगुरू संगे लहावो लीजे, ब्रह्मानंद महारस पीजे
तन मन धन त्यहंआ अर्पण कीजे तो आतम लाभ कारण रे[२]।

:३: ब्रह्मानंद सागरनां फीलतां नव जाण्युं ते दिन ने रात
एवुं अखंड स्वातण ते अखा, रंग लाग्यो छे हरि आकार[३]।

:४: सदगुरूजीनी संगत करिये, मन क्रम वचने तनमन धरिये
ब्रह्मानंद निज सुख अनुसरिये तो मोटो महिमा गुरूदेवनो[४]।

" अ " विभाग की पंक्तियों में तो ब्रह्मानंद का गुरू रूप में स्पष्ट उल्लेख है ही, रही " आ " विभाग की श्लेषात्मक पंक्तियाँ की बात । इस के उत्तर में कहा जा सकता है कि परब्रह्म परमात्मा के स्तवन के साथ साथ अपने गुरू की भी स्तुति हो जाय इस दृष्टि से श्लोक में परब्रह्मवाची और गुरूनामवाची एक ही शब्द रखकर दोनों का एक साथ वंदन करने की प्रथा प्राचीन चली आ रही है । सायणाचार्य [वि.सं.१४ वीं] ने अपने " ऋग्वेद भाष्य " के उपोद्घात के द्वितीय मंगलाचरण में अपने गुरू विद्यातीर्थ " के साथ साथ " विद्या के तीर्थ समान महेश्वर " की भी स्तुति एक ही - " विद्यातीर्थ " शब्द के द्वारा

---

१. अप्रसिध्ध अक्षयवाणी: पृ.४३, भजन २१

२. वही. पृ.४४, भजन २२

३. अखानी वाणी : पृ.२२०, पद १२७

४. वही. पृ.२०७, पद ११४

कर ली है। यथा:

यस्य नि:श्वसितं वेदायोवेदेभ्योऽखिलं जगत्।

निर्ममितमहंवन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्[१]।।

शंकराचार्यने भी विवेकचुड़ामणि के मंगलाचरण में " गोविंद " शब्द प्रयोग के द्वारा अपने गुरू " गोविंद " और " परमात्मा " गोविंद दोनों का एक साथ वंदन किया है[२]:

सर्व वेदांत सिद्धांत गोचरं तमगोचरम्।

गोविंदं परमानंदं सद्गुरूं प्रणतोऽस्म्यहम्।। १।।

इनके अतिरिक्त रूप गोस्वामी और जीव गोस्वामी दोनों ने भी निम्नलिखित श्लोक में " सनातन " शब्द प्रयोग के द्वारा अपने गुरू "सनातन गोस्वामी" के साथ "सनातन - परब्रह्म परमात्मा" की वंदना की है:

१. प्रपन्नमधुरोदय: स्फुरदमंदवृंदाटवी, निकुंजमय मंडप प्रकरमध्य बध्य स्थिति:।
निरंकुश कृपाम्बुधि: व्रज विहार रज्यन्मना:, सनातनतनु: सदा मयि
तनोतु तुष्टिं प्रभु:[३]।।

। विदग्धमाधव - सूत्रधारका कथन।

---

१. ऋक्संहिता : सायणाचार्य विरचित भाष्य संहिता : गणपत कृष्णाजी मुद्रायंत्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशित : मुंबय्या: शाकाब्दा:१८१०

२. विवेक चुड़ामणि : संपा० स्वामी माधवानंद, सन १९३२, पृ.१

३. अक्षय रस : भूमिका :३०

२. नामाकृष्टरसज्ञ: शीलेनोद्दीपयन्सदानन्दम् ।

निज रूपोत्सवदायी सनातनात्मा प्रभुर्जयति[१]।

। उज्जवल नीलमणि: ।।१ ।।

इन दोनों ही मंगलवाची पद्यों मे ' सनातन: ' और ' सनातनात्मा ' शब्द ' भगवान कृष्ण ' और ' सनातन गोस्वामी ' दोनों केसूचक हैं ।

महाकवि तुलसीदास ने ' रामचरित मानस ' में अपने गुरू ' नरहरि ' का ' नररूपहरि ' श्लेष द्वारा स्मरण किया है :

बंदउं गुरू पद कंज कृपा सिंधु नररूपहरि ।

महामोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर[२]।

महा कवि सूरदास ने भी अपने दीक्षा गुरू ' वल्लभाचार्य ' का ऐसे ही काव्यात्मक ढ़ंग से उल्लेख किया है ।

भरोसों दृढ़ इन चरनन केरो ।

श्री वल्लभ नखचंद छटा बिनु सब जग अधिक अंधेरो ।

इस प्रकार श्लेष द्वारा परमात्मा और अपने गुरू - दोनों का एक ही शब्द द्वारा एक साथ वंदन करने की प्राचीन एवं समृद्ध परंपरा का स्वीकार संत - भक्तों में मिलता है । ' आ ' विभाग में उल्लिखित पंक्तियों मे अखा ने इसी प्रथा का अनुसरण करके परब्रह्म परमात्मा और ब्रह्मानंद गुरू दोनों का एक साथ उल्लेख किया है ऐसा नि:संकोच रूप से कहा जा सकता है ।

अखा के पूर्व ब्रह्मानंद नामक किसी समर्थ वेदांती ~~पंडित~~ संन्यासी के गुजरात में

---

१. अक्षय रस : भूमिका : ३०

२. रामचरित मानस [बालकांड] चौपाई ५ प्रका. गीता प्रेस, गोरखपुर पृ.३१

होने का उल्लेख गुजराती साहित्य के किसी भी इतिहास ग्रंथ में नहीं है। अतः जैसा कि पिछले पृष्ठों में अखा और सुंदरदासजी के अध्ययन से संबंधित आख्यायिकाओं से भी स्पष्ट होता है कि ये "ब्रह्मानंद " बनारस " के ही हो सकते हैं।

अखा के गुरू ब्रह्मानंद ही है इस प्रकार की स्थापना को दृढ़ करनेवाला एक और तथ्य मिलता है जो " कवि चरित " में अंकित आख्यायिका से भी ४०-५० वर्ष अधिक पुराना है।

गाँव सीमरड़ा [जि. बोरसद] के संत महात्यमराम [सं. १८८१-१९४५ वि.] ने " भक्त नामावली " की रचना की है। उसमें भारत के जिन प्रख्यात संत- भक्तों के विवरण दिये गये हैं उनमें गुजरात के नरसिंह, मीराँ आदि की गणना की गई है। उसमें अखा से संबंधित निम्नलिखित पंक्ति मिलती है:

" अखा नरहर बुटा गोपाला, एच्यों ब्रह्मानंदके बाला "

इससे अखा, नरहरि, बूटा और गोपाल के एक दूसरेके समकालीन होने के उल्लेख के साथ साथ उन चारों के ब्रह्मानंद के बाल अर्थात् " शिष्य " होने की भी महत्त्वपूर्ण स्पष्ट सूचना मिलती है। संत महात्यमराम के समय को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि अखा और ब्रह्मानंद के शिष्य - गुरू संबंध को सूचित करनेवाली बात कम से कम सवा सौ वर्ष पूर्व से लिखित रूप में मिलती है।

इस प्रकार ब्रह्मानंद और अखा के गुरू-शिष्य संबंध का दृढ़ समर्थन हो जाने के पश्चात् आचार्य उमाशंकर जोशी के प्रश्न - अखा के गुरू ब्रह्मानंद का गुरू कौन?[१] - का उत्तर दिया जा सकता है।

१. अखो अेक अध्ययन : पृ. ५८.

दिनांक २, नवम्बर १६६० को लेखक द्वारा की गई शोधयात्रा के दौरान में उसे अखा के गुरु-शिष्य की परंपरा का सूचक जो " अक्षयवृक्ष " मिला है उसमें अखा के गुरू ब्रह्मानंद के उल्लेख होने के साथ साथ ब्रह्मानंद के भी गुरू का नामोल्लेख है। वह नाम है " जगजीवन स्वामी " का।

जिसके ब्रह्मानंदजी जैसे प्रखर वेदांती - पंडित शिष्य हों ऐसे कोई जगजीवनस्वामी गुजरात में नहीं हुए। मध्ययुगीन हिन्दी संत परंपरा में सतनामी संप्रदाय, निरंजनी संप्रदाय और दादूपंथी में संत जगजीवन के होने के उल्लेख मिलते हैं। सतनामी संप्रदाय के जगजीवन [सं.१७२७-१८१७ वि.] और निरंजनी संप्रदाय के जगजीवन [१८ वीं शती का उत्तरार्ध और १६ वींका प्रारंभ] का समय अखा के समय [सं. १६३१ - १७२५ वि.] से काफी बाद में पड़ता है। अत: इन दोनों का अखा के साथ कोइ संबंध नहीं हो सकता। दादू के समकालीन एवं उनके शिष्य जगजीवनस्वामी [सं०१६६३-६४ वि०] ही ऐसे हैं जिनका समय अखा के समय के साथ मेल में होने के कारण, इन दोनों का संबंध जुड़ सकता है[१]। ये जगजीवनस्वामी दादू दयाल के प्रकांड विद्वान शिष्यों में से एक थे। इन्होंने ही अपने गुरू बंधु सुंदरदास के अध्ययन की व्यवस्था की थी। जगजीवन स्वामी काशी में थे और वहीं पढ़े थे। अत: सुंदरदास को भी वे अपने साथ वाराणसी ले आये और यहाँ उनके अध्ययन की व्यवस्था की। पिछले पृष्ठों में अखा और सुंदरदास के अध्ययन विषयक जिन आख्यायिकाओं का एवं अखा और सुंदरदास की रचनाओं का जो तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है उसके आधार पर यह प्रतीत होता है कि जगजीवनस्वामी द्वारा सुंदरदासजी के अध्ययन की यह व्यवस्था जिन विद्वान के पास की गई थी वे विद्वान और कोई न होकर अखा के गुरू ब्रह्मानंद ही हो सकते है।

---

१. दृष्टव्य: उत्तर भारत की संत परंपरा : सं.२०२१, फुटनोट पृ.४७०

अध्ययन और बहुश्रुतता

अखा को वैष्णवी दीक्षा देनेवाले और परम तत्त्व की समुपलब्धि करानेवाले गुरुओं के उल्लेख मिलते हैं, किंतु जिनके पाससे उन्होंने बचपन में अक्षर ज्ञान प्राप्त किया होगा । उन विद्यागुरु या अपने अध्ययन की कहीं कुछ व्यवस्था करनेवाले किसी गुरु-बंधु के उल्लेख नहीं मिलते । अखा ने स्वयं को अनपढ़[1] अर्थात् काव्यशास्त्र व्याकरणादि के ज्ञान से रहित बताया है ।

किंतु अखा की रचनाओं का गहरा अध्ययन करने पर स्पष्ट विदित होता है कि अखा शायद चार दिवारी की पाठशाला में अ,आ, इ,ई, उ, न पढ़े हों परंतु सहज स्फुरणा एवं शुद्ध विवेकपूर्ण प्रज्ञा के बल से प्रकृति रूपी खुली-अनखुली पुस्तक में निहित अनेक गहन से गहन सत्यों एवं तथ्यों को सफलता से आत्मसात कर पाये थे । इसके अतिरिक्त स्वरचित चतु:श्लोकी भागवत में जिन चार संस्कृत श्लोकों की कवि ने गुजराती गद्य में व्याख्या[2] की है उससे तथा " गुरु शिष्य-संवाद " ग्रंथ में बीच बीच में " संमत " के रूप में संस्कृत के श्लोकों और उनका जो गुजराती पद्यानुवाद प्रस्तुत है उसके आधार पर यह निश्चित रूप से कहा सकता है कि अखा संस्कृत भाषा साहित्य से अवश्य परिचित थे ।

---

१. अ. ना मैं पढया गण्या अखा, ना मोहे कृत्यका जोर

गलिया बेल पाल्या पिया,देख्या अपनी ओर ।

आ. देव ना देवि आराध, पिंगल न व्याकर्ण साध । सं.प्रि.११६

इ.... अमो जगण मगण नथी जाणता । अखे गीता कडवक २ पं.८

२. दृष्टव्य : प्रस्तुत प्रबंध का परिशिष्ट

३. दृष्टव्य : अखो - एक अध्ययन : पृ.१६३ से १६६

नर्मदाशंकर महेता ने स्व. कमलाशंकर त्रिवेदी स्मारक व्याख्यान मालामें दिये गए अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान में अखा की रचनाओं का सूक्ष्म अध्ययन करके अखा द्वारा पठित एवं श्रवित आकर रचनाओं में से जिनकी उल्लेख किया है उनके साथ " अष्टावक्र गीता ", "अनाथदासजी कृत "विचार-माल", कबीर की रचनायें, सुंदरदास कृत "ज्ञान समुद्र" आदि ग्रंथोंका भी स्मरण किया जा सकता है। इन सब के साथ सूफी दर्वेशों की रचनाओं, गुजराती के नरसिंह महेता, मांड़ण बंधारा, नरहरि आदि की भी रचनाओं की विशेष छाया पर कवि पर देखी जा सकती है। इन सब ग्रंथों का निर्देश यथास्थान किया गया है।

अखो: पृ.३८

१. अ. योगवासिष्ठ महारामायण : अखे गीता-३ : अनुभव बिंदु-३२, गुरू-शिष्य संवाद-२६

आ. भगवद् गीता पद-३० [अखानी वाणी], छप्पा -५२२, गु.शि.सं.३-२-६

इ. श्रीमद भागवत। एकादश एवं द्वादश स्कंध। गु.शि.सं.-३, पंचीकरण-६ -अनुभव बिंदु-६

ई. महाभारत-शांतिपर्व। नारायण खंड। गु.शि.सं.२-२०, ३-२६.

उ. पंचदशी : पंचीकरण

ऊ. बृहदारण्यकोपनिषद। शत पथ ब्राह्मण का चौदहवां कांड। अ.बिंदु-४६ गु.शि.सं.२-१४

ए. छांदोग्योपनिषद- इंद्र विरोचनाख्यान तत्वमसि प्रकरण- अष्टम - चित्र विचार संवाद-१३४, गु.शि.सं.-४६

ऐ. अध्यात्म रामायण : अखे गीता-६

ओ. पुरूष सूक्त : छप्पा -७३

औ. दत्त गीता : अखे गीता, गु.शि.सं.[४६]

अं. शांकर भाष्य : गु.शि.सं.३.

विभिन्न स्थानों की यात्रा के दौरान में कवि ने ज्योतिष, औषधि, कृषि आदि विषयक बहुत कुछ सुना था, देखा था और अनुभव किया था। अपनी जिज्ञासु वृति के कारण कवि जब कभी विभिन्न स्वभाव-प्रकृतिवाले लोगों के संपर्क में आये उन सब से उन्हों ने कुछ न कुछ सीखा अवश्य। अर्थात् अखा बहुश्रुत थे। उनकी बहुश्रुतता[१] का अनुभव उसकी रचनाओं का अनुशीलन करते समय पद पद पर होता है।

---

१. ज्योतिष:

अ. शनिश्चर दृष्ट जे देश पर, त्यां बस्ती न रहे पंछ।३२। कुमति अंग। साखी

आ. चन्द राहुकी गत्य हे जीव शिव की चन्द राहु कु ज्युं देत देखाई

मिन्न परे राहु दृष्ट न आवत संग मिल्यां बतिया लोक गाई। सं. प्रि. ८६

औषधि:

अ. ज्युं उजला सोमल प्राणहर, कालीमणि फहेर खोया ।।२३।। कमति-साखी

आ. लवंग सत्व राजा पीर ताहे कूवा गहेन गमाई ।।१।। अनुभवशबुद साखी

इ. रामछेली औषधि भखे मर्म संजीवनी आप

ताके मुख फिणाते, मोहोरा भया तासु जाये जगत दु:ख ताप। अ. श. ३

ई. विषम वचन मीठे अखा और भीतर भरे अंगार

देख्या लाल मीठी नहीं, जैसे औषधि कुंआर ।।३।। कपटी-अंग ३ साखी

रसायण:

एक मन अरू दुजा पारा, मरे सो मूल अमूले

कच्चा अपना अरथ बगाडे, पक्का नर यूं बोले। पद १४

कृषि:

अ. कहेनहारमें सक नहीं, सुननहारमें एब

अखा उषार भूमिमें वीज जात सब गेब ।।७।। कुमति अंग साखी

आ. अखा जानके खेत में, खडधन रहेणा पाय

त्युंहरि जनमें खल मिले, सो अधबीच मध्य तें जाय ।।११।। दुनिया अंग-साखी

नासुर:

ज्युं नारू निकस्या अंगकुं लावे मीणा मणिहार

सकल अंग लेपन किया, होत प्राण परिहार ।। नैराश अंग-साखी

ऐसे बहोत मिले अखा! ज्युं ताती करे भूमि कोय

आग बुझया गंधक लगे, तो फरी भभका होय ।।४।। नैराश अंग- साखी

शिष्य परंपरा

शिष्य अखा का को नहीं, गुरू सारा संसार
होते होते हो गई, समझ न पाया पार[१]।।

पदे रहे तो पद शीखजे जे पद शैल अगम्य
पदार्थ पदमाहि जड़े, जो होय अखा गुरूगम[२]।।

+ + +

साचा गुरू मिले अखा तो अंतर करे उद्योत
साचा शिष्य गृहे अखा जो मिल रहा ओतप्रोत[३]।।

साचा सदगुरू सीखकूं करी छोड़े हरिरूप
साचा सीष गुरूदेवकूं माने परब्रह्म अनूप[४]।।

गुरू करणा जे शीष्यकूं पूरण पद के हेत
ता बीन सब संसार है ध्येय ध्याता समेत[५]।।

उपर्युक्त लिखित साखियों का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह कहा जा सकता है कि अखा की संतता [Saintliness] एवं वाणीसे प्रभावित होकर उन्हें अपने गुरूरूप में स्वीकार करने के उद्देश से उनके पास स्वेच्छा से आये हुए जिज्ञासुओं को शिष्य पद की महत्ता एवं परहेजों से पुरी तरह अवगत कराने के पश्चात् ही उन्हें इस कार्य में आगे बढ़ने दिया है।

---

१. अक्षयरस : शिक्षा अंग, साखी ३
२. वही, साखी ४
३. वही, गुरूको अंग, साखी १५
४. वही, साखी १६
५. वही, साखी १७

अखा के गुरू-शिष्यों की परंपरा का और उनकी रचनाओं की सागर महाराज ने जब क्रमश: सं. १६७६ वि. और सं. १६८८ वि. में पहले पहल प्रकाशित किया तब गुजरात के कई विद्वानों ने " ये रचनायें अखा की नहीं हो सकती, यह गुरू-शिष्य परंपरा जाली है, अखा का न तो कोई शिष्य है और न तो कोई गुरू " आदि आदि कई अभिप्राय व्यक्त किये थे, किंतु समय बढ़ते बढ़ते ज्यों ज्यों नये नये अनुसंधान होते गये, नई नई सामग्री प्रकाश में आने लगीं। आज यह कहा जा सकता है कि सागर महाराज का परिश्रम सचमुच ही बड़ा महत्त्वपूर्ण एवं अभिनंदनीय है। उन्हों ने अखा की गुरू-शिष्य परंपरा तथा हिन्दी गुजराती कृतियों की जो सामग्री प्रकाशित की है, उन सब को अनेक हस्त लिखित पोथियों और आंतरिक प्रमाणों का ठोस आधार है यह बात प्रकाश में आ रही है। उनके द्वारा प्रकाशित अखा और उनके शिष्यों की रचनाओं के आधार का उल्लेख " अखा की रचनाओं का परिचय " वाले अध्याय में यथास्थान किया गया है। यहाँ सागर महाराज द्वारा निर्दिष्ट अखा की शिष्य परंपरा की समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

अखा के शिष्यों में अखा की सी [१] गुरूभक्ति [२] अद्वैतनिष्ठा [३] प्रेमलक्षणा भक्ति का स्वीकार [४] स्वानुभव की मस्ती [५] बाह्याचारों एवं मिथ्या विधानों की कटु निंदा [६] कई पारिभाषिक शब्दों का पारंपरिक स्वीकार आदि अंतरंग साम्य के विपुल प्रमाण[१] मिलते हैं। इसके अतिरिक्त भी सभी शिष्यों की बानी की हस्तलिखित पोथियाँ और उनके गुरू-शिष्य संबंध का परिचायक " वंश वृक्ष " [अक्षयवृक्ष] " कहानवा आश्रम " से मिलता है। इसके साथ यह भी ज्ञातव्य है कि इन संत-कवियों की रचनाओं में अपने एवं अपने गुरू के भी स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि अखा की शिष्य परंपरा प्रामाणिक एवं सच्ची है।

---

१. संतोनी वाणी : वाणी विभाग

२. सागर महाराज की हस्त लिखित डायरी। संपा. डॉ. त्रिपाठी।

गुजरात के विभिन्न प्रदेशों में स्वतंत्र मंदिरो एवं गद्दियों के द्वारा अपने मूल गुरू के ही तत्वज्ञान एवं भक्ति का उपदेश दे कर उसका प्रचार एवं प्रसार करनेवाले अनेक शिष्य प्रशिष्यों में " संत लालदास " और " विद्याधरजी " अखा के प्रथम शिष्य है ।

अखा और लालदास का मिलन:

अखा के शिष्य लालदास ने अपनी रचनाओं में अखा के गुरू रूप में जो उल्लेख किये है उन्हें प्रस्तुत अध्याय के प्रारंभ में अच्छी तरह देखा जा चुका है । अत: यहाँ लालदास और उनके शिष्य जीवनदास के गुरू शिष्य संबंध के अंत:साक्ष्यों के आधार पर अखा और लालदास के प्रत्यक्ष मिलन का समय निश्चित करने का प्रयत्न किया जाएगा ।

अखा के प्रशिष्य जीवनदास की " अकल रमणा " कृति का रचना काल सं.१८०२[१] वि. और " जीवन रमणा " का सं.१८२४[२] वि.है । इस प्रकार -- जीवनदास का कवनकाल सं.१८०० वि.से सं.१८३० वि.तक का है ।

" अकलरमणा " की विषाय वस्तु का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह लगता है कि प्रस्तुत कृति जीवनदास की प्रौढ़ावस्था में रचित है जब कि उनकी उम्र चालीस [४०] वर्ष की होगी । अत: संवत १८०० में से ४० वर्ष कम करने पर जीवनदास का जन्म संवत १७६० वि. निकलता है ।

---

१ संवत १८।। सो ब्होतरो चउदश भादरवा वद
  दास जीवण सीद्धी पामीओ, वार हतो सो बुध ।। ३१. ह.लि.पो.८
  - डॉ.त्रिपाठी

२. संवत १८२४ सार पोष वद पांचम शुक्रवार
  एनो करनारो आत्माराम, पण दास जीवन तुं ले छे नाम ।।
  ह.लि.पोथी ८. डॉ.त्रिपाठी

जीवनदास के गाँव सिमरीआ जाकर वहाँ के निवासियों से पूछने पर मालूम होता है कि सिमरीआ के समीपस्थ मही नदी के उस पार आज कल जिसे "चेतन-चोतरो" कहते हैं वहां लालदास का निवास स्थान था। जीवनदास नदी को पार कर अपने गुरू से मिलने के लिए जाया करते थे। उस समय जीवनदास को गुरू की ओर से यह सिद्धि प्राप्त हुई थी कि नदी में बाढ़ होने पर भी वे पानी के ऊपर से चलकर उस पार जा सकते थे। संभव है उस समय जीवनदास की उम्र ३०-४० वर्ष की हो।

दो पीढ़ियों के बीच अधिक से अधिक ५० [पचास] वर्ष का अंतर स्वीकार कर जीवनदास के जन्म संवत १७६० में से ५० वर्ष निकाल देने पर लालदास का जन्म संवत १७१० वि. के आसपास हो सकता है। यह संवत अखा के मृत्यु संवत १७२५ वि. के मेल में अर्थात् अखा की उत्तरावस्था में लालदासजी विद्यमान थे। अत: दोनों का मिलने का स्वीकार किया जा सकता है।[१]

अखा और विद्याधर:

अखा के दूसरे शिष्य विद्याधर "लुनावाडा" [जि. पंचमहाल] के नागर ब्राह्मण थे। उनकी कोई रचना अभी तक मिली नहीं है। डॉ. त्रिपाठी से प्राप्त हस्तलिखित पोथी सं. सात [७] में "संत मीखा" के जो पाँच गरबी-पद मिलते हैं उनमें से एक में अखा - विद्याधर - प्रेमदास - एवं प्रभुदास का एक साथ स्मरण किया हुआ मिलता है :

---

१. दृष्टव्य: संतोनी वाणी, भूमिका भाग, लालदासजी, पृ. २७

+ + +

अखे पुरूष तो आपे होता, ते विद्याधरमां वासे जी
प्रेमदासमां पूरण पोते, ए लीला प्रकाशी रे ।
प्रभुदासनी पूरण लीला प्रेम धरी प्रकाशुं जी
भर जौवनमां भाव धर्यो हो हृदय कमलमां वास रे ।

अर्थात् अखा विद्याधर में वास करते हैं, विद्याधर प्रेमदास में वास करते हैं और प्रभुदास पूर्ण लीलाधारी है ।

लालदासजी और उनके शिष्य-प्रशिष्य :

संत लालदासजी के प्रमुख शिष्यों मे जीवनदास " ब्रह्म ज्ञानी " और हरिकृष्ण महाराज " की विशेष गणना होती है । यहाँ इन दोनों के गुरू-शिष्य संबंध पर क्रमश: प्रकाश डाला जाएगा । " ब्रह्म ज्ञानी " के नाम से प्रसिद्ध संत जीवनदास गाँव खानपुर [ता.लुनावाड़ा] के खड़ायता बनिया थे । शीमरिया में उनकी समाधि भी है । जैसा कि अन्यत्र वर्णित किया गया है, संत जीवनदास, लालदासजी के शिष्य थे । इन्हों ने अपनी " जीवन गीता " " जीवन रमण " एवं " जीवण चातुरी " में अपने गुरू लालदास के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है :

कहे रे जीवन गुरू लाल मलीआ ताथे वो आवागमन मेट लीओ[१]।

+ + +

" गुरू लाल " कृपा करी, जीवनरमण ते तारे ठरी[२]।

---

१. जीवणदास ब्रह्मज्ञानीनी रचनाओ. ह.लि.प्रत सं.१२ संग्रा.डॉ.त्रिपाठी -पद १
२. वही " जीवण रमण " का अंतिम अंश ।

संत जीवणदास के एक शिष्य " वखतगिरि " थे । उन्होंने अपने गुरू " जीवणदास " की " जीवण-रमण " की जो प्रतिलिपि की है, उसमें हरिकृष्ण महाराज की पुत्री एवं शिष्या " रतन बाई " का उल्लेख मिलता है । वखतगिरि ने जीवणदास की " जीवण रमण " रतनबाई के पठनार्थ प्रतिलिपित की गई है । अहमदाबाद में लाखा पटेल की पोल में आये हुए नागर विसल नगरा के घर में बैठ कर यह प्रतिलिपि की गई है[१]। हरिकृष्ण महाराज का निवास स्थान भी इसी पोल में था और विसलनगर नागर ही थे । अत: यह कहा जा सकता है कि " कहानवा आश्रम " की तरह प्रस्तुत स्थान भी अखा के शिष्यों के लिए सत्संग करने का एक और महत्त्वपूर्ण स्थान " अखाड़ा " था ।

---

१. संवत १८३७ सार भादरवा वद पांचम सोमवार वाचि तेने जे महाराज लखी छे रतनबाईना काजे अहमदाबाद मधे रही लखा पटेलनी पोलमां नागर विसलनगर तेहनी हवेलीमां वचले मले बेसीने लखी छे संपूरण । " जीवणदास ब्रह्मचारी " : ह. लि. पो. १२ संग्रा. डॉ. योगीन्द्र त्रिपाठी

हरिकृष्ण महाराज :

अहमदाबाद, नागरवाडा, लाखा पटेल की पोल में रहनेवाले संत हरिकृष्ण महाराज जाति से विसनगरा नागर ब्राह्मण थे । उन्होंने अपने गुरू लालदासजी का अतीव भक्ति भाव से स्मरण[१] किया है । गाँव उमरेठ [जि.खेडा] के संत केवलपुरी ने स्वरचित गुरू महिमा कृति में अपने गुरू हरिकृष्णाजी[२] और उनके गुरू लालदास[३] दोनों का स्मरण किया है ।

हरिकृष्ण महाराज के अन्य शिष्यों में गांडाराम, नारायणानंद, जीता मुनिनारायण, रतनबा और गौरीबा की गणना होती है । इनमें से गांडाराम और नारायणानंद के विषय में कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी है[४]।

रतनबा और गौरीबा-दोनों हरिकृष्ण महाराज की पुत्रियाँ और शिष्या थीं । इन दोनों के प्रकीर्ण पद " संतो नी वाणी " में संकलित है । रतनबाई ने एक पद में अपने गुरू हरिकृष्ण का स्मरण किया है[५]।

---

१. दृष्टव्य: संतोनी वाणी : हरिकृष्णाजी. गुरू स्तुति, पृ.५७-५८

२. इंद्रजीत गुरू अचल अतीव, हरिकृष्ण रूपें हसरी
   केवल उपर करी करूणा, सर्व राख्या मन अंशरी
   - केवलपुरी कृत कविता : संपा.:
   हरगोविंददास कांटावाला पृ.८२

३. मनोहर तारण स्वामी म्हाव, लीधो, पीयो दीधो लाल गुरू ल्हाव ।
   -वही पृ.४६

४. अखो अने मध्यकालीन संतपरंपरा. डॉ.योगीन्द्र त्रिपाठी

५. ज्ञान रतन गुरू हरिकृष्ण मलिया, एक आत्मा चीन्यो नर नारमां ।
   - संतोनी वाणी पृ.३५

गौरीबाई ने भी एक पद में अपने गुरू हरिकृष्णाजी और गुरू बंधु जीता मुनि नारायण का स्मरण किया है [१]।

जीता मुनि नारायण ने अपने गुरू हरिकृष्णाजी का यों स्मरण किया है :

मुनि जीता ते शुं जाणे
गुरू हरिकृष्ण यी ए माणे ।
ने भाव भक्ति परमाणे, साधु ते कहीए ते कहीए[२]।

जीता मुनि नारायण के प्रमुख शिष्य कल्याणदास थे । वे खंभात तालुका के उनेल गाँव के रहनेवाले थे और जाति से पटेल थे । कहानवा आश्रम

---

१. नागरवाडामां साधु रहे छे रे ।
जाते छे ब्रह्मण ने नाते छे नागर
वस्तुनो भर्यो तन सागर । नागरवाडामां..... ।
ध्यान धरे छे ने ज्ञान कहे छे गौरी मुनि जीता एम लहे छे रे ।
-नागर
-संतोनी वाणी पृ.४१

२. वही. पृ.१३७

में उनकी समाधि है । इन्होंने अपनी रचनाओं में गुरू जीता मुनि नारायण का तो स्वतंत्र रूप से स्मरण किया[1] ही है, एक पद में लालदास, जीवनदास, हरिकृष्ण और जीता मुनि नारायण सभी गुरू-शिष्यों की अस्खलित श्रृंखला का भी उल्लेख किया है:

लाल गुरू परमात्मा, त्रिगुणात्मानी टेक
हरिकृष्ण, जीवन, नारायणमां बोलनहारो एक[2]।

अन्यत्र एक साखी में कल्याणदासजी ने अपने गुरू बंधु " सुख सागर "-संतराम : महाराज [नड़ियाद] का भी स्मरण किया है:

सुख सागर संत पधार्या छे ते दास कल्याणने भाव्या छे
ते जीता मुनिने भाव्या छे, ते परमपदने पाम्या छे[3]।

प्रस्तुत पंक्ति से प्रतीत होता है कि उनको संतराम महाराज के द्वारा ही जीता मुनि नारायण का समागम हुआ है ।

जीता मुनि नारायण को भी एक पुत्री थी जिसका नाम " समजुबा " था । जीता मुनि नारायण ने अपने भजनों मे अपनी पुत्री समजुबा और गुरू पुत्री " रतनबाई " को उपदेश दिये हैं[4]।

इस प्रकार " अक्षय वृक्ष " का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि धारावाहिक रूप से बढ़नेवाली संत अखा की शिष्य परंपरा में कल्याणदासजी के पश्चात् गुरू गद्दी को शोभित करनेवाले संतों में पूर्णानंदस्वामी, ध्यानानंदस्वामी और भगवानजी महाराज प्रमुख है ।

---

१. नारायणे नवरो कर्यो काम क्रोध टालीने
कल्याणदासनुं कुल तर्युं, ते मधूरने भाळीने । - संतोनी वाणी पृ.१६६
२. वही पृ.१६६
३. वही पृ.१६६
४. वही. पृ.१४०-१४४

सागर महाराज की " व्यक्तिगत डायरी[१] " के आधार पर नड़ियाद [जि.खेड़ा] में संत कल्याणसागर द्वारा स्थापित " सत केवल " मंदिर, बड़ौदा में "श्रीमन्नृसिंहाचार्यजी" और "निरांत संप्रदाय" के मंदिर आदि भी अखा की शिष्य परंपरा के ही प्रसिद्ध एवं समृद्ध स्मारक हैं[२]।

संत अखा के प्रमुख शिष्य-प्रशिष्यों के प्रस्तुत संक्षिप्त विवरण तथा " अक्षय वृक्ष " और सागर महाराज की " व्यक्तिगत डायरी " के अवलोकन से यह बात स्पष्ट होती है कि इन सब संत-भक्त कवि और कवयित्रियों ने अखा की शिष्य परंपरा को अखंडित ही नहीं रखा, उसे अपनी रचनाओं एवं वक्तव्यों से समृद्ध एवं विशाल भी किया है।

स्वभाव, उपदेश और विरोध:

अखा के जीवनवृत पर दृष्टिपात करने से यह प्रतीत होता है कि उनके स्वभाव में शुरू से ही कुछ ऐसा था कि तत्कालीन समाज में उनका विरोध होता रहा। वास्तव में अखा " सत्यान्वेषी " थे। धर्मभगिनी एवं टकसालवाली घटनाओं के भीतर भी अखा का यही जिज्ञासु स्वभाव कारणभूत है। दृश्यमान विश्व के नानाविध प्रपंचों का कारण एवं उनके रहस्य को समझने की आकुल जिज्ञासा ने उन्हें स्वभाव से घुमक्कड़ नहीं होने पर भी अथाक खोजी के रूप में स्थान स्थान पर घुमाया[3]। परंतु " आत्मा की वाणी " खुल जाने पर वे एकदम शांत, निरुद्यमी एवं

---

१. डॉ.योगीन्द्र त्रिपाठी से प्राप्त।

२. दृष्टव्य: अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा : डॉ.योगीन्द्र त्रिपाठी

३. अ. देश विदेश दिखे अखा.... । अजब कला अंग -साखी १२

आ. तिरथ फरी फरी थाक्या चर्ण.... । फुटकल अंग - छप्पा

पूर्ण आश्वस्त हो गये[१]। उन को इस बात का दृढ़विश्वास हो गया कि मनुष्य का किया कुछ भी नहीं होता, जो कुछ घटित होता हुआ दिखाई पड़ता है वह एक मात्र हरि-परब्रह्म की प्रेरणा वा उनके द्वारा हो रहा है[२]।

अखा की इतनी बड़ी ' सुझ ' सत्य ज्ञान की उपलब्धि ' के होने पर उन्होंने घमंड करने की अपेक्षा अपने को हरि की कृपा द्वारा पालित ' गलिया बेल ' ही बताया[३]। उन का स्वानुभव था कि सच्ची सूझ के बिना, अहं से प्रेरित होकर। हरि को पाने के आशय से मनुष्य जो कुछ करता है वह हरि को पाने के साधन रूप होने की अपेक्षा माया के विघ्न जाल में फँस कर उससे दूर चले जाने के उपकरण रूप हो जाता है[४]।

---

१. जो जन होवे राम का तो राम भरोसा राख ।
   क्या कुबुद्धि भटक्या फिरे, सुण अजगर की साख ।।
   अजगर रहे आनंदमें, न करे आस, उमेद ।
   सो पशु ते पुरूष नीच है, जे अखा न पावे भेद ।।

२. सेहेज निबाहो होत है, देव नर नाग सब लोक ।
   अखा जानत अनुभवी सिर लेन करत सोक ।।
   निज सामर्थ्यें ना अवतरे, ना जीवे निज बल कोय ।
   बड़ा अचंबा वे अखा, बिच कर्ता क्युं होय ?

३. गलिया बेल पाल्या पिया, देख्या अपनी ओर । कृपा अंग, साखी-३

४. अ. जे करीश ते आपदा........ ।
   आ. मेरा किया होता नहीं होता है सब गैब
      अखा इतनी समज ले जावी सारी एब ।।

अखा के समय तक चूँकि " चैतन्य महा प्रभु " " श्री वल्लभाचार्यजी " और " गोकुल गोसांई " श्री विट्ठलनाथजी " गुजरात भर में धर्म प्रचार-यात्रायें कर चुके थे, घर घर में वैष्णव धर्म एवं भक्ति का अतीव कट्टरता से पालन किया जाता था । अद्वैत-ज्ञान की प्रखर स्वानुभूतियों को जनता की भाषामें बड़े तीखे स्वभाव से एवं डंके की चोट कहनेवाला इतना समर्थ अन्य कोई ब्राह्मणेतर संत-भक्त -महात्मा नहीं था । अत: ऐसी परिस्थिति में जैसा कि ऐसे महा पुरूषों का विरोध होता है, अखा का भी विरोध किया गया । वर्णाश्रम एवं धर्म के दृढ़ विधि- निषेधों में पगे रहनेवाले समाज के द्वारा किये गये विरोध की क्या कहें, " दयाराम " जैसे वल्लभ मत के प्रबल समर्थक एवं संप्रदाय के यशस्वी कवियों द्वारा भी अखा के उपदेश एवं दर्शन के प्रत्याख्यान में ग्रंथ रचना तक होने लगी[१]। अपना अपना गिरोह बनाकर बैठे ज्ञान-अंध उलकों ने सूर्य की-सी भासमान ज्ञान की बातें कहनेवाले उस संत के सम्मुख अपने अंधकार-अज्ञान की ही बातें रख कर उन्हें " लंठ " और " भंडू " तक कहा गया । किंतु अखा अपनी फक्कड़ाना मस्तीसे

---

१. अखो : एक अध्ययन, पृ. २४६ - २५२

२. ज्यां जोईए त्यां कूड़े कूड़, सामा सामी बेठा घूड़,
को आवी वात सूर्यनी करे, ते आगळ लेइ चांचज धरे :
अमारे हजार वर्ष अंधारे गयां, तमे आवा डाह्या बालक क्यांथी थया ?
अखा मोटानी तो एवी जाण, मूकी हीरो उपाडे पहाण ।। ६४५ ।। छप्पा

३. अ. लंढ़ कहो कोई भंड कहो, पाखंड कहो कोई भिखारी
सजन कहो दूरिजन कहो, चोर कहो कोई कहो ब्रह्मचारी ।
कोउको पाँव टिके नहीं तांहां, जाहां जाये कीनी अखेजु पथारी ।
– ।।८३ ।। संतप्रिया ।

ज्ञान के सर्वोच्च शिखर से कब टलनेवाले थे[१]? ऐसे विरोधो से उनको अपनी जीवनी-शक्ति -- आत्म शक्ति के विकास में अत्यधिक सहायता मिली और इस आत्म शक्ति के बल पर ही लापरवाह होकर तत्ती अक्खड़ता के साथ सबको आड़े हाथों लेकर[२] अखा समकालीन परिस्थितियों मे सर्वथा ऊपर उठ कर अपने आसन पर दृढ़ रहे ।

---

१. माला न पेरूं न टीका बनाऊं सरण काहा जाऊं ना कोई किसीका
आपा ना मेटुं थापा ना थापुं में मदमाता हूं मेरी खुशीका
भीस्त न दोजक दोऊ न चाहुं न चाहुं नाम रूप किसीका
है नाही की संध्य अखा की जानेगा जे ठोर उसीका ।।८७।। सं०प्रि०

२. अ. तन उजले धन उजला और उजले कपडे अंग
एक मन मैले सब मस भया, जो उज्वल न मिला हरिसंग।।५।।चेतना अंग साखी
उजला खर कहा कीजिए, काली तो भी गाय ।।६।।
न्याय करिजाने बहु नर नमे और रागरंग के जाण
आतम अनुभे बीन अखा सब गुण सो कठे पहाण ।।७।।

आ. कहा भयो कंचन कुंदन सो अंग रंग सुगंध सोभा अति ओपे
कहा भयो तान तुरंग तुरी चढ़े धुजे धरा जाके नेक ही कोपे
धनदको सो धन करन सो दानी तो काहा काज सर्यो हरि तोपे ।
एते गुन-औगुन भये अखो केहे जो गुरु ज्ञान न पायो गुरु पें ।।२२।। सं०प्रि०

बि. रामकी ठोर चाम रंग राच्यो ज्यों स्वान सुनी कीरेही लाग्यो ।
।।१३।। सं०प्रि०

बी. ज्ञानकी गत्य बुझत नहीं बावरे, ज्ञान बीना अज्ञान टटोरे
देह-विदेह कीनी चाहे मुरख, उद्योत होय कैसे गुंजा बटोरे ।
।।८४।। सं०प्रि०

जीवन वृत विषयक निष्कर्ष

अखा का जन्म अहमदाबाद के निकटवर्ती जेतलपुर गाँव में सं. १६३२ वि. के आसपास श्रीमाली सोनार परिवार में हुआ था । पंद्रह-सोलह वर्ष की उम्र होने पर वे अपने पिता के साथ अहमदाबाद आकर रायपुर के खाड़िया विस्तार में सर चिनुभाई देसाई के डेला के पास कुओंवाली खिड़की में रहने लगे । वहाँ अखा का निवासस्थान- " अखानो ओरडो " कह करके आज भी बताया जाता है ।

अखा के पिता का नाम रहियादास था । अखा की माता उनके जन्मते ही स्वर्ग सिधार चुकी थी । उनके गंगाराम और धमासी नामक दो भाई थे । अखा की भाँति धमासी का भी वंश नहीं चला । गंगाराम की पीढ़ी वाले आज भी अहमदाबाद में रहते है ।

अखा को दो पत्नियाँ थीं । पहली झगड़ालू थी और द्वितीय के साथ अखा की अच्छी पटती थी । अखा अपने कुटुम्ब की ओर से असंतुष्ट थे । ।

अखा बचपन में विशेष शिक्षा नहीं प्राप्त कर सके थे । किंतु मेधावी होने के कारण किसी भी वस्तु को एक बार सुन, पढ़ और देख लेने पर उसे अच्छी तरह से ध्यान में रख लेते थे । उस युग में गाँवों में शिक्षा का विशेष प्रचार नहीं होने के कारण अखा जैसे बालकों को अपनी जीविका के उपार्जन में संलग्न हो जाना पड़ता था । अखा अपना पैतृक धंधा " सुनारी " करते थे ।

बचपन में ही माता का चल बसना, समझदारी आते आते ही पिता का दिवंगत हो जाना, प्रिय भगिनी का युवावस्था में ही स्वर्ग सिधार जाना, दो दो पत्नियों के होते हुए भी पारिवारिक जीवन की असंतुष्टि तथा जिसके

ऊपर घना स्नेह था उस धर्म भगिनी का अविश्वस्त होना, टकसाल के साथियों के द्वारा दुर्व्यवहार करना आदि कारणों ने मिल कर अखा के अंतर में जन्मतः रहे हुए निर्वेद- वैराग्य के बीज अंकुरित हो उठे और वे आत्मिक शांति की खोज में निकल पड़े ।

गृह त्याग कर सच्चे गुरू की खोज करते करते अखा गोकुल गये और वहाँ " वैष्णवाचार्य " गोकुलनाथजी " से दीक्षित हुए । परंतु, उस आचार प्रधान धर्म में उनका विचार प्रधान मन नहीं रम सका । और वे गोकुलनाथजी को छोड़ कर बनारस गये । बनारस में उन्हे " ब्रह्मानंदजी " मिले । ब्रह्मानंदजी की महानता से प्रभावित होकर अखा ने उन्हें अपने गुरू रूप में स्वीकार किया । ब्रह्मानंदजी की आध्यात्मिक शिक्षा से अखा की " आतम की वाणी " खुल गई । आतम की वाणी खुल जाने के पश्चात् अखा अपनी आत्मा को ही सच्चा गुरू समझने लगे ।

बनारस के प्रवास के बीच उन्होंने वेदांत, तथा षट् शास्त्र आदि का अध्ययन किया । इस बीच कबीर और सुंदरदास की बानियों का भी उन पर गहरा प्रभाव पड़ा । तत्पश्चात् उन्होंने संत प्रिया, ब्रह्मलीला तथा अनेक पद, कुंडलिया, साखियाँ, रमेनियाँ, आदि हिन्दी साहित्य की रचना की ।

यहाँ से वे अपने शिष्यों के साथ पंजाब की ओर गये जहाँ कि अरबी फारसी मिश्रित भाषा में उनके सूफीशाही, झूलना, जकड़ियाँ आदि साहित्य का निर्माण हुआ ।

" ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति " के अनुसार आत्म साक्षात्कार होने के कारण स्वयं परब्रह्म स्वरूप हो जाने पर अखा गुरू, शिष्य, पंथ, संप्रदाय आदि माया-जाल से ऊपर उठ गये थे । अत: अपनी आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी को भी अखा ने अपना गुरू नहीं बनाया । लालदास आदि संतों की बानियों से विदित होता है कि अपने जीवन काल में ही ब्रह्मज्ञानी, महात्मा, आले दर्जे के दर्वेश एवं सच्चे भगत के रूप में उनकी ख्याति सारे गुजरात में हो गई थी, अनेक जिज्ञासु जन उनके सत्संगार्थ आते थे और कितनों ने ही उनके गंभीर एवं सौम्य व्यक्तित्व से प्रभावित हो कर मानसिक दृष्टि से अखा को अपने गुरू रूप में स्वीकार किया था ।

अखा की विचार पद्धति जिज्ञासुओं को तीव्रता से प्रभावित करने लगी और क्रमश: उनकी विचार पद्धति में सोचनेवाले जिज्ञासुओं की एक अच्छी मंडली भी हो गई । बाद में विचार पद्धति ने एक विशिष्ट परंपरा का रूप धारण किया और क्रमश: वह परंपरा " अक्षय वृक्ष "-सी विशाल हो गई । उस प्रसार का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है :

अखाजी
|
लालदासजी
|
हरिकृष्ण महाराज
|
जितामुनि नारायण
|
कल्याणदास
|
पूर्णानंद
|
ध्यानानंद
|
भगवानजी महाराज

आकण्ठ

वैष्णव धर्म के दंभपूर्ण आचारों में मग्न गुजरात की जनता को सर्व प्रथम अखा ने ही जागृत कर सच्चे ज्ञान की प्राप्ति की ओर उन्मुख होने के लिए प्रेरित किया । जन-जीवन में व्याप्त मिथ्या विधि-विधानों का कटु शैली में प्रत्याख्यान कर अखा ने " स्वानुभव " और " सहज साधना " पर विशेष बल दिया । इस प्रकार उन्हों ने अपने पश्चात् आनेवाले ब्रह्मनिष्ठ, स्वतंत्र विचारकों ~~[illegible]~~ एवं सच्चे प्रेम निष्ठ धर्म सुधारकों के लिए मार्ग विस्तीर्ण एवं स्वच्छ किया ।

अखा जीवन में सादगी एवं सदाचार के आग्रही थे । अवलोकन, अनुभव, अध्ययन, मनन-चिंतन एवं दंभ, पाखंड, बाह्याचार, षट्शास्त्रों के वितंडावाद आदि से उन्हें सख्त नफरत थी । सत्य के प्रखर पक्षपाती एवं स्पष्टतावादी होने के कारण अखा ने तत्कालीन वैष्णव धर्म एवं उनके आचार्य, महंत, महाराजों को उनके अधार्मिक व्यवहारों के कारण आड़े हाथों लिया । समाज के ठेकेदार ज्ञान दग्धों, खोटे गुरुओं, शठ ज्ञानियों, दुर्जनों एवं कर्मजड़ ब्राह्मणों और जैनियों को भी अखा ने कोड़े लगाये ।

ब्रह्म की झौल में झूलनेवाले अखा गुजरात के एक प्रमुखतम संत कवि थे । अहमदाबाद में सं. १७२५ वि. के आसपास अखा का निर्वाण हुआ ।